सर्वहारा दृष्टिकोण

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) का मुखपत्र (पाक्षिक)

वर्ष-29 अंक-23 7 से 21 दिसम्बर, 2014 मुख्य संपादक - कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती मूल्य : 2 रुपया

जनविरोधी कामों का रिकार्ड बना चुकी है मोदी सरकार

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा था लोगों के लिए 'अच्छे दिन' लाएंगे। लेकिन अपने पाँच-छह महीने के शासन में ही वे जो लाए हैं उससे जनता भयभीत है। इस दौरान मोदी साहब ने जो किया है वह है

1. रेल यात्री किराया और अन्य शुल्कों में वृद्धि

सत्तासीन होने के एक महीने के अन्दर ही मोदी सरकार ने रेल के यात्री किराये 14.2 प्रतिशत और अन्य शुल्क 6.5 प्रतिशत बढ़ा दिए। लगभग सभी मासिक टिकटों के दाम दुगने कर दिए। पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार की तरह ही रेल में बड़े पैमाने पर निजीकरण कर रही है और 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) का अनुमोदन कर रही है। 'डायनैमिक प्राइसिंग' के नाम पर 50 प्रतिशत तत्काल टिकटों के दामों की क्रमवर्धमान दर से बढ़ोतरी का फरमान जारी किया गया है, मांग जैसे-जैसे बढ़ेगी उसी अनुपात में दाम भी बढ़ेंगे। लेकिन यात्री सुविधाएं जिस खस्ताहाल में थीं उसी में हैं।

2. दवाइयों के मनमाने दाम बढ़ाने का कम्पनियों को अवसर

दवाइयों के दामों पर से सरकारी नियंत्रण हटा कर बीजेपी सरकार ने देशी-विदेशी मल्टीनेशनल कम्पनियों को मनमाने दाम बढ़ाने का मौका दे दिया है। अर्थव्यवस्था में उदारीकरण शुरू होने से पहले इस देश में 90% से ज्यादा दवाइयों पर सरकारी नियंत्रण था। नब्बे के दशक में भूमण्डलीकरण की नीति अपनाने के बाद कांग्रेस सरकार ने बहुत सी दवाइयों पर से धीरे-धीरे नियंत्रण हटा दिया। मौजूदा बीजेपी सरकार ने 108 दवाइयों पर से नियंत्रण हटा दिया है। कुत्ते के द्वारा काटे जाने से होने वाली बीमारी के इलाज के लिए एंटी-रेबीज के जिस इंजेक्शन की कीमत लगभग 2500 रुपये थी, नियंत्रण हटाने के बाद उसकी कीमत 7500 रुपये हो गई है। कैंसर की एक दवाई की कीमत 8500 रुपये थी, नियंत्रण हटाने के बाद उसकी कीमत एक लाख रुपए से ज्यादा हो गई है। जब नियंत्रण था तब भी कम्पनियाँ कानून की खामियों का फायदा उठाते हुए घुमा फिरा कर दवाइयों की पोटेंसी में थोड़ा बहुत फेरबदल करके बड़ी भारी दर से दाम बढ़ा देती थीं। नियंत्रण हटा देने से कम्पनियों के सामने और कोई भी बाधा नहीं रह गई है। रोग से आक्रांत मरणासन्न मनुष्य के जीवन को लेकर सर्वोच्च मुनाफा कमाने की छूट मोदी सरकार ने दे दी है। (शेष पृष्ठ 2 पर)

पूँजीवाद में जनतंत्र है मुट्ठी भर अमीरों के लिए जबकि समाजवाद में जनतंत्र होता है 90% जनता के लिए

– कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती

(महान नवम्बर क्रान्ति की 97वीं वर्षगांठ पर 15 नवम्बर को फिरोजशाह कोटला, दिल्ली में आयोजित सभा में पढ़ा गया एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) के पोलिट ब्यूरो सदस्य कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती का संदेश)

प्यारे कॉमरेडो और दोस्तो,

हालांकि मेरी हार्दिक इच्छा थी कि महान नवम्बर क्रान्ति की 97वीं वर्षगाँठ के इस ऐतिहासिक अवसर पर दिल्ली में हो रही इस सभा में आपके साथ होता लेकिन अचानक बीमारी के कारण यह नहीं हो सकता। हालांकि शारीरिक तौर पर न सही फिर भी मैं आपके साथ ही हूँ और आप सभी के साथ साथ पूरे मजदूर वर्ग और हमारे देश के मेहनतकश लोगों को अपना क्रान्तिकारी अभिनन्दन देता हूँ।

मार्क्स-एंगेल्स के योग्य शिष्य और सर्वहारा के महान नेता कॉमरेड लेनिन के नेतृत्व में हुई विश्व की इस प्रथम सर्वहारा क्रान्ति से मूल्यवान सीख और प्रेरणा लेने के लिए पूरी दुनिया के सचेत सर्वहारा इस दिन को मनाते हैं। हालांकि यह क्रान्ति रूस में हुई थी फिर भी यह सर्वहारा की प्रथम क्रान्ति थी जिससे दुनिया के विभिन्न देशों के हम सर्वहारा जुड़े हुए हैं। इस क्रान्ति के माध्यम से एक बार जब साम्राज्यवाद की चेन टूटी तो एक देश से दूसरे देश में सर्वहारा क्रान्ति सफल होनी शुरू हुई थी। चीन, उत्तर कोरिया, वियतनाम और क्यूबा के मजदूर वर्ग और अन्य शोषित जनता ने इस रास्ते मुक्ति हासिल की थी।

शुरूआत से ही दुनिया के साम्राज्यवादियों, पूँजीवादियों, व प्रतिक्रियावादियों ने इस क्रान्ति और मार्क्सवाद की महान विचारधारा के खिलाफ निन्दा अभियान चलाने में अपनी पूरी ताकत झोंक दी थी, क्योंकि उन्होंने स्वभावतः भांप लिया था कि मार्क्सवाद उनके शोषण-दमन के शासन का खात्मा कर सकता है और करेगा, तथा मजदूर वर्ग और अन्य शोषित जनता को मुक्त कर देगा। उन्होंने क्रान्ति को रोकने के तमाम हथकण्डे अपनाए लेकिन एक बार जब मार्क्सवाद-लेनिनवाद की महान विचारधारा ने जनता पर अपनी पकड़ बना ली तो इसने ऐसी एक ताकत को पैदा किया जिसने प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा खड़ी की गई तमाम बाधाओं और रुकावटों को उखाड़ फेंका।

नवम्बर क्रान्ति से पहले पूँजीपति वर्ग ने मार्क्सवाद और वैज्ञानिक समाजवाद को कल्पना लोक बता कर लोगों को गुमराह करने का प्रयास किया था। लेकिन समाजवादी क्रान्ति की विजय के बाद उनके पास कोई जवाब नहीं था। अब अधिकतर समाजवादी देशों में, खासकर रूस और चीन में समाजवाद ढह जाने के बाद दुनिया के प्रतिक्रियावादियों की हिम्मत बढ़ गई है और वे लोगों को यह यकीन दिलाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं कि 'मार्क्सवाद फेल हो गया है', 'यह एक बेकार सिद्धांत है', 'यह एक मृत सिद्धांत है'। लेकिन जो पूँजीपति वर्ग के पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं हैं वे सहज ही इतिहास से देख सकते हैं कि साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति के इस युग में जहाँ कहीं भी महान सामाजिक क्रान्तियाँ हुई हैं, चाहे रूस में हो या चीन में, उत्तर कोरिया में हो या वियतनाम में सभी मार्क्सवाद-लेनिनवाद की महान विचारधारा से निर्देशित थी। आज मार्क्सवाद-लेनिनवाद से निर्देशित हुए बिना कहीं भी क्रान्ति नहीं हो सकती है। एक निष्पक्ष और खोजी मन यह भी पता लगा सकता है कि जहाँ कहीं भी समाजवाद का पतन हुआ वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद का पालन करने से नहीं बल्कि इसके विपरीत मार्क्सवाद-लेनिनवाद की महान विचारधारा से भटकाव की वजह से हुआ। पूर्ववर्ती सोवियत संघ में कॉमरेड स्टालिन की मृत्यु के बाद वर्गद्रोही खुश्चेव ने और चीन में कॉमरेड माओ त्से-तुंग की मृत्यु के बाद केपिटलिस्ट रोडर तेंग श्याओ पिंग व उनके गुर्गों ने पार्टी व राजसत्ता का नेतृत्व हथिया लिया और बड़ी धूर्तता और गोपनीय ढंग से आधुनिक संशोधनवाद पर अमल किया और अंततः प्रतिक्रान्ति कर दी और पूँजीवाद की पुनर्स्थापना कर डाली।

क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति, दोनों ने ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद की अपराजेयता व अपरिहार्यता को दर्शाया है। जिस प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद से निर्देशित हुए बिना क्रान्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अनुसरण किये बिना समाजवाद का निर्माण नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार इतिहास ने दृढ़ता के साथ दर्शा दिया है कि मर रही सभ्यता यानी पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए और एक नई व उन्नत सभ्यता यानी समाजवाद के निर्माण के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद अपरिहार्य है।

असल में, पूँजीपति वर्ग जो कुछ कहता है, उस पर खुद भी विश्वास नहीं करता है। यदि मार्क्सवाद एक बेकार विचारधारा है तो वे इससे इतने भयभीत क्यों हैं?

दुनिया जानती है कि यह समाजवादी राज्य और समाजवाद की ताकत थी जिसने जर्मनी, इटली और जापान की फासीवादी धुरी के खिलाफ जीत सुनिश्चित की थी और फासीवाद के फौजी बूट तले जाने से दुनिया को बचाया था। सोवियत संघ को युद्ध में खींच लाने से पहले तक फासीवादी ताकतों को अपराजेय माना जा रहा था; इसने लगभग बिना किसी प्रतिरोध के एक के बाद दूसरे देश पर कब्जा कर लिया था। लेकिन एक बार जब कॉमरेड स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ युद्ध में उतर गया तो युद्ध का स्वरूप ही बदल गया; फासीवादी ताकतों की एक पर एक हार होने लगी और अंततः उन्हें पूरी तरह कुचल दिया गया। पूँजीपति वर्ग इस तथ्य को भी नहीं बताता कि कॉमरेड स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत जनता और लाल फौज ने दुनिया को फासीवादी हमले से बचाया था, डेमोक्रेसी को बचाया था और दुनिया में शांति बहाल की थी। बल्कि इसके लिए दो करोड़ सोवियत लोगों ने अपनी जान कुर्बान की थी।

यह तथ्य भी किसी के द्वारा नकारा नहीं जा सकता है कि कॉमरेड स्टालिन के महान नेतृत्व में रूस के समाजवादी राज्य की विजय, न केवल फासीवादी ताकतों को हराने और विश्व साम्राज्यवादी युद्ध खेमे को कोने में धकेलने व कमजोर करने में हुई बल्कि इसने उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों की मुक्ति के लिए भी अति अनुकूल परिस्थिति तैयार कर दी थी। घोर प्रतिक्रियावादियों को भी इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि द्वितीय विश्व युद्ध में सोवियत शक्ति की विजय से पहले किसी भी उपनिवेश या अर्ध-उपनिवेश ने स्वतंत्रता हासिल नहीं की थी। इतिहास दर्शाता है कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों का दमन करते हैं जबकि समाजवाद राष्ट्रों को दमन से मुक्त करता है। इस तथ्य को छिपाने के लिए बुर्जुआ बुद्धिजीवी कहानियाँ गढ़ते हैं और तथ्यों को तोड़ते-मरोड़ते हैं। झूठ बोलना साम्राज्यवादियों और पूंजीवादियों की आदत बन गई है।

जबकि ये साम्राज्यवादी प्रचार करते हैं कि समाजवाद में कोई जनतंत्र नहीं है। राजनीतिक अर्थशास्त्र का कोई भी छात्र इस साधारण तथ्य को आसानी से समझ सकता है कि एक पूँजीवादी समाज जहाँ निजी सम्पत्ति का अधिकार होता है और उत्पादन अधिकतम मुनाफा कमाने के लिए होता है, वहाँ सभी समान नहीं हो सकते हैं; सभी व्यक्ति उत्पादन के साधनों के मालिक नहीं हैं, टाटाओं और बिड़लाओं जैसे चन्द हैं जिनका तमाम उत्पादन के साधनों और वितरण पर कब्जा है जबकि 90% लोग उनके संस्थानों में उजरती-गुलामों के रूप में काम करने के लिए बाध्य हैं। यह समझने के लिए थोड़े से विवेक की जरूरत है कि पूँजीपति मालिक जो मजदूरों की श्रम शक्ति को खरीदता है और मजदूर जो मालिकों को अपनी श्रम शक्ति बेचते (शेष पृष्ठ 5 पर)

जनविरोधी कामों का रिकार्ड....

(पृष्ठ 1 का शेष)

3. डीजल के दाम भी सरकारी नियंत्रण से मुक्त

मोदी सरकार ने सितम्बर में डीजल के दाम पूरी तरह नियंत्रणमुक्त कर दिए हैं। 2002 में बीजेपी-नीत एनडीए सरकार ने ही पहले पहल डीजल को विनियंत्रित करना शुरू किया था। 2013 में मनमोहन सिंह-नीत कांग्रेस सरकार ने भी विनियंत्रण का फैसला लिया था। रिलायंस पैट्रोलियम, एस्सार ऑयल आदि गैर-सरकारी तेल कम्पनियों के स्वार्थ में ही यह विनियंत्रण किया गया है। इसके फलस्वरूप डीजल के दाम बढ़ाने के मामले में कम्पनियों के सामने कोई भी अवरोध नहीं रहा। जन परिवहन में इस्तेमाल होने वाला 43% ईंधन डीजल है। अत: डीजल के दामों में जब तब की जाने वाली दाम वृद्धि से जहाँ परिवहन का भाड़ा बढ़ेगा, रोजमर्रा के जरूरी सामानों के दाम बढ़ेंगे, वहीं कृषि में सिंचाई का खर्च बढ़ेगा और कृषि जनित उत्पादन का खर्च बढ़ेगा।

4. प्राकृतिक गैस के दाम बढ़ाए गए

अम्बानी की रिलायंस कम्पनी के स्वार्थ में सितम्बर में मोदी सरकार ने प्राकृतिक गैस के भी दाम बढ़ा दिए। एक यूनिट गैस के दाम 4.2 डॉलर से बढ़ा कर 5.61 डॉलर प्रति यूनिट कर दिए गए हैं। लगभग 33% दाम बढ़ाए गए हैं। इसके चलते खाद उत्पादन, बिजली उत्पादन, पाइप से सप्लाई की जाने वाली रसोई गैस पीएनजी और गाड़ियों में इस्तेमाल होने वाली सीएनजी के दाम बढ़ेंगे। इसके अलावा साल में दो बार प्राकृतिक गैस के दाम बढ़ाने का फैसला मोदी सरकार ने लिया है।

5. मनरेगा में कटौती की जा रही है

साल में 100 दिन का रोजगार देने की मनरेगा की जो योजना सारे देश में चालू हुई थी मोदी सरकार उसमें बड़ी भारी कटौती करने जा रही है। 100 दिन के काम का आयाम घटा कर 51% करने की बात कही गई है। देशभर में हर जिले की बजाय सिर्फ 200 गरीब घोषित जिलों के कुछ ब्लॉकों के अन्दर ही इस योजना को सीमित किया जा रहा है। जो सब जिले सरकार के मतानुसार उन्नत हैं उन सब जिलों के गरीबों को कोई काम ही नहीं मिलेगा। अत: देश के लाखों-लाख गरीब लोगों के लिए काम के अवसर छिन जाएंगे।

6. श्रम कानूनों में संशोधन कर श्रमिकों के अधिकारों का हनन

गत 31 जुलाई 2014 को राजस्थान की बीजेपी सरकार ने औद्योगिक विवाद कानून, फैक्ट्री एक्ट, कान्ट्रेक्ट लेबर (रेगुलेशन एण्ड एबोलिशन) एक्ट, अप्रेंटिसशिप एक्ट में संशोधन करके जब चाहे छंटनी करने का अधिकार मालिकों को दिया है, स्थाई प्रकृति के कामों में स्थाई मजदूरों की बजाय अस्थाई, केजुअल मजदूर नियुक्त करने का अधिकार भी दिया है। फैक्ट्री एक्ट में जो संशोधन किया गया है उसमें छोटे और मझोले उद्योगों में मजदूरों की सुरक्षा के लिए जरूरी उपाय करने की बाध्यता से मालिकों को छूट दी गई है। इन्हीं संशोधनों को केन्द्रीय स्तर पर बीजेपी ला रही है। इसी बीच केन्द्रीय सरकार जो संशोधन लाई है उससे कर्मचारियों के मौलिक अधिकारों पर हमला किया गया है और मजदूरों की एक विशाल संख्या को श्रम कानूनों के दायरे से बाहर धकेल दिया गया है। संक्षेप में, इन सब संशोधनों के माध्यम से मालिकों के हाथों में छंटनी का बेरोकटोक अधिकार, मनमर्जी से कारखाना बंदी, ले ऑफ का अधिकार दे दिया गया है।

7. किसान हित-विरोधी भूमि अधिग्रहण कानून

स्पेशल इकॉनोमिक जोन (सेज) बनाने के नाम पर पूरे देश में किसानों की जमीन हड़पने की जो तत्परता 5-6 सालों से चल रही थी उसके खिलाफ विभिन्न राज्यों में उठे किसान आन्दोलन की वजह से यूपीए सरकार ब्रिटिश शासन के भूमि अंधिग्रहण कानून को बदल कर नया कानून बनाने को मजबूर हुई थी। इस कानून में कहा गया था कि सरकारी-गैर सरकारी उद्योगों के मामले में भूमि का अधिग्रहण 70-80% किसानों की सहमति के बिना नहीं किया जाएगा। बीजेपी सरकार ने इस कानून को बदल कर इस धारा को जोड़ने का प्रस्ताव किया है कि 50% किसानों की सहमति होने से ही भूमि अधिग्रहण किया जा सकेगा। इसके चलते भूमाफिया सहज में ही जनहित के नाम पर किसानों की जमीन हड़प सकेगा।

8. प्रतिरक्षा में 49% विदेशी निवेश

मोदी सरकार ने अपने पहले बजट में ही घोषणा कर दी है कि जहाँ टैक्नोलॉजी प्रदान नहीं की जाएगी ऐसे क्षेत्रों में प्रतिरक्षा में विदेशी निवेश की सीमा बढ़ा कर 49% प्रतिशत की जाएगी और जिन क्षेत्रों में विदेशी निवेश करने वाले तकनीकी जानकारी देने के लिए तैयार हैं उन सब में विदेशी निवेश की सीमा बढ़ाकर 74% की जाएगी। युद्धास्त्रों से संबंधित उपकरणों के निर्माण के क्षेत्र में 100% विदेशी निवेश किया जा जाएगा।

परिणामत: क्या होगा? पूँजीवादी भारत देश अस्त्र-शस्त्रों से लैस हो कर एशिया में पड़ोसी देशों पर दादागिरी चलाएगा। वह अमेरिका का जूनियर पार्टनर बन कर दूसरे देशों में अपने आर्थिक-राजनैतिक प्रभुत्व का विस्तार करने की क्षमता बढ़ाएगा। इसके साथ देश की जनता की सुरक्षा का क्या संबंध है? देश के लोग अध-भूखे हैं, भुखमरी, बिना इलाज, कुपोषण का शिकार हो कर मर रहे हैं। बीजेपी सरकार की पूँजीपतियों की स्वार्थरक्षक आर्थिक नीति जनता की आर्थिक सुरक्षा को खत्म कर दे रही है। देश के हाथ में हथियार बढ़ाकर इस समस्या से छुटकारा नहीं मिलेगा। देश की सुरक्षा के लिए यह सामरिक शक्ति नहीं बढ़ायी जा रही है। यह बात मोदी ने खुद ही स्वीकार की है।

लेह-लद्दाख दौरे को लेकर सेनाध्यक्षों के सामने मोदी ने कहा था, ' हमारा पड़ोसी देश युद्ध करने की शक्ति खो बैठा है। सिर्फ अल्पकालिक संघर्षों के लिए ही नहीं बल्कि और भी वृहत्तर कारणों से फौज को ताकतवर बनाना चाहती है सरकार। ... देश की सामरिक शक्ति हमारे प्रभाव को इस्तेमाल करने के काम आएगी।' (सूत्र: आनन्द बाजार पत्रिका 18 अक्टूबर 2014)

जाहिर है कि इस प्रभाव का मायना है भारत के पूँजीपतियों के लिए पड़ोसी देशों में माल बेचने की ताकत में बढ़ोतरी। इसमें आम जनता का क्या हित है?

9. बीमा क्षेत्र में 49% विदेशी निवेश

कांग्रेस सरकार ने बीमा में 26 प्रतिशत तक विदेशी पूँजी को छूट दी थी। मोदी सरकार ने उसे बढ़ा कर 49% कर दिया है। उसके चलते बीमा धारकों का हित घातक रूप से क्षतिग्रस्त होगा। एक समय भारत में बीमा गैर सरकारी रूप से संचालित होता था। बीमाधारकों के हितों का तरह तरह से उल्लंघन होता था। बीमाधारकों के हितों की रक्षा के नाम पर सरकार ने गैर सरकारी बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण करके एलआईसी का गठन किया था। मोदी सरकार का यह कदम इसके विपरीत है। बीमा क्षेत्र में सीधा विदेशी निवेश बीमा सुरक्षा का उल्लंघन करेगा। साधारण लोग जो भविष्य की सुरक्षा की भावना लेकर बीमा कराते हैं उनके हितों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हाथों में सौंपा जा रहा है। अत: बीमा सुरक्षा कहने को वस्तुत: कुछ रहेगा नहीं।

10. सार्वजनिक प्रतिष्ठानों का विनिवेशीकरण

बीजेपी सरकार ने अपने पहले बजट में ही राष्ट्रीयकृत बैंकों में विनिवेशीकरण की घोषणा कर दी है। बाजार में शेयर बेच कर राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा पूँजी जुटाने का जो प्रस्ताव दिया गया है वह विनिवेशीकरण की ही प्रक्रिया है। बैंकों का विनिवेशीकरण होने से, बैंक सरकार के अधीन न रहने से इसका परिणाम क्या होगा? बैंक में जो रुपया जमा कराते हैं उनके रुपये की गारण्टी का सवाल उठ खड़ा होगा। सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। सिर्फ बैंक ही नहीं, आयल एण्ड नेचुरल गैस कमीशन (ओएनजीसी) के विनिवेशीकरण की भी सरकार ने घोषणा की है। कोयला ब्लॉकों के भी निजीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई है।

11. बड़े पैमाने पर सेज बनाने का प्रस्ताव

बजट में मोदी सरकार ने बड़े भारी पैमाने पर 'सेज' (स्पेशल इकानोमिक जोन) बनाने की घोषणा की है। असल में 'सेज' है स्पेशल एक्सप्लाएटेशन जोन या मजदूरों के शोषण का स्वर्गराज्य। दूसरे शब्दों में 'सेज' है पूँजीपतियों को अकूत सरकारी मदद मुफ्त मुहैया करा देना। यहाँ सरकार मालिकों को पानी, बिजली, ढांचागत सुविधाएं मुफ्त प्रदान करेगी। पूरे उत्पादन और विक्रय को कर-मुक्त कर देगी। दूसरी तरफ मजदूरों का ट्रेड यूनियन बनाने, आन्दोलन करने, मांग उठाने, प्रतिवाद करने का कोई अधिकार नहीं रहेगा। मालिक लोग मनमर्जी से छंटनी करेंगे। यहाँ श्रम कानून लागू नहीं होंगे। मालिकों की मर्जी के मुताबिक मजदूरों को काम करना होगा, जिसका आधुनिक कपटपूर्ण नामकरण हुआ है 'उद्योग-बंधुत्व परिवेश'।

12. धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप

इस साल के अगस्त महीने में बीजेपी की धार्मिक शाखा संघ परिवार ने उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में इसाई धर्मावलम्बी 12 दलितों को जो बाल्मीकी नाम से जाने जाते हैं। उन्हें जबरदस्ती हिन्दू धर्म में धर्मांतरित कर दिया। ये बाल्मीकी अतीत में हिन्दू थे। घर वापसी का नाम लेकर संघ परिवार ने उनका पुन: धर्म परिवर्तन करा दिया। भारतीय संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने विश्वास के अनुसार चलने का अधिकार दिया है। बीजेपी इस अधिकार का उल्लंघन करते हुए इसाई धर्म विश्वासी दलितों और आदिवासियों का जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करा रही है।

13. मुस्लिम धर्म मानने वाले लोगों पर हमला

इस लोकसभा चुनावों के 10 सप्ताह के अन्दर उत्तर प्रदेश में 600 छोटे-बड़े साम्प्रदायिक दंगों की घटनाएं थानों में दर्ज की गई हैं। मुसलमानों के खिलाफ इन सब दंगों के सम्बन्ध में मोदी अपनी राजनैतिक विशेषता के अनुरूप चुप हैं। उत्तर प्रदेश के शहरी विकास मंत्री आजम खान ने हाल ही में कहा था कि नई मोदी सरकार का कहना है कि भारत के मुसलमान जो मोदी सरकार का विरोध करें वे पाकिस्तान चले जाएं।

14. लेखकों और कलाकारों पर हमला

लोकसभा चुनावों से पहले उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर में बीजेपी ने जो साम्प्रदायिक दंगा कराया था वह देश भर में जोरशोर से प्रचारित हुआ था। इस दंगे की जांच करके पत्रकार और फिल्मकार शुभ्रदीप चक्रवर्ती ने एक डाक्यूमेण्टरी फिल्म 'इन दिनों मुजफ्फर नगर' तैयार की थी। मोदी सरकार ने इस फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगा दी।

मेघा कुमार नाम के एक भारतीय शिक्षाविद की एक पुस्तक प्रकाशित करने जा रहे थे ओरियण्ट ब्लेकस्वैन नामक एक प्रकाशक। किताब के एक अध्याय में 1969 से लेकर अब तक गुजरात के अहमदाबाद शहर में हुए साम्प्रदायिक दंगों और यौन उत्पीड़न के सम्बन्ध में एक विवरण दिया गया था। आरएसएस के शीर्ष नेता दीनानाथ बत्रा ने इस किताब के प्रकाशन के खिलाफ अदालत में केस दायर किया। कानूनी पत्र प्राप्त करने के बाद ओरियण्ट ब्लेकस्वैन ने सुरक्षा के मद्देनजर इस किताब का प्रकाशन बन्द कर दिया।

पेंगुइन संस्था का अनुभव भी यही है। शिकागो यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर वेनडी डोनिगेर ने 'दि हिन्दू : एन अल्टर्नेटिव हिस्ट्री' नाम से एक पुस्तक छापने का आर्डर पेंगुइन इण्डिया नामक एक प्रकाशक को दिया था। दीनानाथ बत्रा इसके खिलाफ भी अदालत में चले गए। तीन साल मुकदमा चलने के बाद पेंगुइन संस्था ने अपने कर्मचारियों की सुरक्षा के हित में स्वेच्छा से किताब छापने से किनारा कर लिया।

15. इतिहास को विकृत करने की कुचेष्टा

उग्र हिन्दूत्ववादी संगठन आरएसएस के माध्यम से बीजेपी भारत को एक हिन्दू राष्ट्र के रूप में प्रचारित कर रही है। यह भी भारतीय संविधान के विरुद्ध है। भारत का संविधान भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में घोषित करता है। भारत के शासक वर्ग द्वारा तरह तरह से धर्मनिरपेक्षता की नीति का उल्लंघन किए जाने के बावजूद संविधान की घोषणा के मुताबिक भारत धर्मनिरपेक्ष देश है। बीजेपी इसे हिन्दू राष्ट्र में रूपांतरित करने के उद्देश्य से इतिहास को विकृत करने जा रही है। इसी उद्देश्य से एक तरफ स्कूल पाठ्यक्रम में हिन्दूत्ववादी विचारों को लगातार घुसेड़ा जा रहा है। दूसरी तरफ, इण्डियन काऊंसिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च (आईसीएचआर) के चेयरमेन के पद पर आरएसएस सिद्धांतकार प्रो. वाई. सुदर्शन राव को बैठाया गया है जिसका प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर ने जोरदार विरोध किया है। उल्लेखनीय है कि ये सुदर्शन राव कोई जाने-माने इतिहासकार नहीं हैं। उनकी एकमात्र पहचान है कि वे संघ परिवार के विशिष्ट संगठक हैं।

मोदी सरकार ने यह जो सर्वव्यापक आक्रमण शुरू किया है इसे रोकने का वास्तविक रास्ता क्या है? एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) का मानना है कि देशव्यापी एकजुट वामपंथी आन्दोलन का ज्वार पैदा कर पाने से भुगतभोगी जनता प्रतिवाद में आगे आएगी और नरेन्द्र मोदी की इस ध्वंसलीला को परास्त करना संभव होगा।

भारत में जनजागरण (गतांक का शेष)

हमारे देश भारत में राजा राममोहन राय के आगमन के साथ ही हमें यूरोप के धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद का प्रथम प्रभाव देखने को मिलता है। इस रोशनी में यह कहा जा सकता है कि इस देश में राजा राममोहन राय के साथ नवजागरण शुरू हुआ। यूरोप के बुर्जुआ मानवतावादी चिन्तन, आदर्श और धारणाओं को धर्म के मूल सार से मिलाकर धार्मिक सुधार के रास्ते पर ही उन्होंने इस देश में नवजागरण आन्दोलन चलाया। फलस्वरूप इस देश का नवजागरण आन्दोलन धार्मिक सुधार के रास्ते पर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। बाद में इस धारा में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के आगमन के साथ नवजागरण आन्दोलन ने आगे की ओर एक लम्बा डग भरा। अन्धविश्वास और धर्मान्धता से ग्रसित समाज में जहाँ पण्डे-पुरोहितों व ब्राह्मणों के आधिपत्य के नीचे लोग सिसकते-हाँफते जी रहे थे, और चौतरफा एक सड़न पैदा हो रही थी, धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद को विद्यासागर के चिन्तन में एक शानदार अभिव्यक्ति मिली। जहाँ तक मैं समझता हूँ विद्यासागर ही पहले पथप्रदर्शक हैं जिन्होंने हमारे देश में धार्मिक सुधार के रास्ते पर चल रहे नवजागरण आन्दोलन के अन्दर एक विच्छेद ला दिया था। सर्वप्रथम उन्होंने ही हमारे देश में मानवतावादी आन्दोलन को जहाँ तक सम्भव था वहाँ तक धर्म के प्रभाव से मुक्त किया और इसे इतिहास, विज्ञान और युक्ति-तर्क की मजबूत नींव पर खड़ा किया। उनके अन्दर ही इस आन्दोलन ने अपना धर्मनिरपेक्ष चरित्र प्राप्त किया। आज विद्यासागर को लोग एक महापुरुष के तौर पर मानते हैं, श्रद्धा करते हैं, यहाँ तक कि उनके भक्त हैं। लेकिन उनमें से कितने लोगों ने उन्हें यथार्थ में समझा है? हमारे देश के अधिकांश लोग विद्यासागर को बाहर से देखकर, उन्हें घुटनों से ऊपर चढ़ी हुई धोती पहने और सिर पर चोटी रखे देखकर धर्मपरायण ब्राह्मण के तौर पर ही मानते हैं। यह बात सही है कि वे धर्मग्रथों में पारंगत पुरोहित या धर्मपरायण ब्राह्मण जैसे दिखते थे। विद्यासागर की वेशभूषा ऐसी ही थी क्योंकि वे अपने देश को गहराई से जानते थे। लेकिन आन्तरिक व्यक्तित्व में वे एक सच्चे मानवतावादी थे जो देश की तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति में तमाम प्रतिकूलताओं के बीच निर्भीकता के साथ डटे रहे। उन्होंने विज्ञान पर आधारित पाश्चात्य सभ्यता और भारतीय सभ्यता के बीच एक तर्कसंगत मेल विकसित करने की कोशिश की। इसलिए उन्होंने छात्रों को अंग्रेजी और स्टुवर्ट मिल का *'लॉजिक'* पढ़ाये जाने पर जोर दिया और इनको संक्षेप में नहीं बल्कि पाठयक्रम के पूर्ण विषयों के रूप में पढ़ाया जाए। उन्होंने तर्क दिया कि धर्मग्रंथों के बोझ से इस देश के लोगों की कुबड़ी हो गई रीढ़ को संस्कृत सिखा कर सीधा नहीं किया जा सकता। उन्हें मानसिक और शारीरिक तौर पर मजबूत बनाना है तो उन्हें सामूहिक तौर पर विश्व के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तक उनकी पहुँच होने का मौका देना होगा। अंग्रेजी सीखने से देश के युवक-युवतियाँ इसके माध्यम से इतिहास, लॉजिक यानी तर्कशास्त्र का अध्ययन कर सकेंगे और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान तक उनकी पहुँच हो सकेगी। वे यूरोप के वस्तुवादी दर्शन से परिचित होंगे। इस सवाल पर उनकी बनारस के संस्कृत कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल वैलेन्टाइन से बहस भी हुई थी। प्रिंसिपल वैलेन्टाइन संस्कृत और भारत के दो प्रमुख परम्परागत दर्शनशास्त्रों–सांख्य और वेदान्त को भी पढ़ाने के पक्षधर थे। आप जानते हैं कि विद्यासागर स्वयं सांख्य और वेदान्त पर एक अथोरिटी थे और इन दर्शनों की पूर्ण महारत उन्हें हासिल थी। फिर भी उन्होंने इन दर्शनशास्त्रों को पढ़ाने के वैलेन्टाइन के विचार से अपना मत विरोध प्रकट करते हुए कहा था कि उनकी बजाय छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाई जाए और इसके माध्यम से यूरोप के वस्तुवादी दर्शनों और वैज्ञानिक ज्ञान से परिचित कराया जाए। यह वस्तुजगत का बारीकी से अध्ययन कर सत्य को गहराई से समझने और एक नये मार्गदर्शक जीवन दर्शन या नये नैतिक मूल्यों को निर्मित करने में उनकी मदद करेगा। विद्यासागर ने यह भी दलील दी कि न तो यूरोप का बर्कले का दर्शन और न ही सांख्य और वेदांत के दर्शन छात्रों का उपकार कर सकते, क्योंकि ये सब दर्शन भ्रांतिपूर्ण थे। इसलिए आज ये दर्शन सत्य को जानने-समझने में उनकी मदद नहीं कर सकते और उनका मार्गदर्शन नहीं कर सकते। इसलिए खास तौर पर युवा पीढ़ी को और आम तौर पर सभी देशवासियों को अगर सत्य को जानना-सीखना है तो एक तार्किक रुझान (रेशनल टैम्पर) विकसित करने के लिए प्रोत्साहन देना होगा। इसी दृष्टिकोण से विद्यासागर ने छात्रों को इन अध्यात्मवादी व भाववादी दर्शनों और व्यर्थ के शास्त्रों को पढ़ाने के विचार का विरोध किया था। ऐसे थे विद्यासागर।

ऐतिहासिक-वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में धर्म, नीति – नैतिकता, मूल्यबोध और धर्मनिरपेक्षता के बारे में शिवदास घोष

इस तथ्य को देखकर कि वे शास्त्रों का गहरा या प्रकाण्ड ज्ञान रखते थे, बहुत से लोग सोचते हैं कि वे धार्मिक नैतिक मूल्यों से संचालित थे। यह सही नहीं है। शास्त्रों के उनके गहरे अध्ययन और शास्त्रों अर्थात् धर्मग्रंथों के विधि-विधानों में कुछ सुधारों को लागू करने के पीछे उनका उद्देश्य मानव का कल्याण और उत्थान करना था। उनका दृढ़ विश्वास था कि सभी शास्त्र मानव के लिए बने हैं न कि मानव शास्त्रों के लिए बने हैं। जो भी धार्मिक नैतिक मूल्यबोध उनमें थे वे वास्तव में मानव और उसके कल्याण से सरोकार रखते थे। दुःखी-पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूति और सामाजिक उत्थान के लिए सरोकार उनके कार्यों का निमित बना। मनुष्य ही उनकी सारी सोच के केन्द्र में था। उनके जीवन और कार्यों से यह स्पष्ट है कि विधवा-विवाह के लिए अगर शास्त्रों में इसके लिए उन्हें अनुमोदन नहीं मिला होता तब भी वे इसके लिए आन्दोलन में भागीदार होते और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वे फिर भी जेहाद छेड़ते। वास्तव में यह सोच कर हैरानी होती है कि किस तरह धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद एक ऐसे आदमी पर इतना गहरा असर डाल सका जिसने अपना सारा जीवन शास्त्रों में लगा दिया था और जो धार्मिक संहिता के द्वारा शासित समाज में जिया था। मेरे विचार से यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है कि वे सोच-विचार में भाववाद के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त थे या नहीं। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके सोच-विचार की दिशा धर्मनिरपेक्ष थी। उनके शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार करने से अत्यन्त सहजता के साथ समझा जा सकता है कि धार्मिक सुधार के रास्ते पर हमारे देश में राममोहन राय के काल से जिस नवजागरण की शुरूआत हुई थी, विद्यासागर उस धारा में स्पष्ट विच्छेद थे। विद्यासागर ही थे जिन्होंने उस सामाजिक परिवेश में जितनी दूर तक सम्भव था वहाँ तक मानवतावादी आन्दोलन को धार्मिक दृष्टिकोण व प्रभाव से मुक्त किया था। उनका जीवन और कार्य-कलाप निस्संदिग्ध रूप से इस सच्चाई की पुष्टि करते हैं।

दूसरा एक व्यक्तित्व जो विद्यासागर के समकालीन था और जिसने विराट पैमाने पर मानवतावादी आन्दोलन को धार्मिक संरक्षण से मुक्त करना चाहा था वे थे माइकेल मधुसूदन दत्त। उन्होंने रामायण और महाभारत को इस देश में चली आ रही परम्परा से हट कर बिल्कुल अलग, एक नई रोशनी में पेश किया। माइकेल ने असल में रामायण की एक बिल्कुल नई व्याख्या देने की कोशिश की। उन्होंने राम को जिनकी कीर्ति गाथा लोगों ने सदियों से इस देश में गाई थी, एक बिल्कुल आम आदमी के रूप में चित्रित किया। इसके द्वारा उन्होंने प्रश्न उठाया कि पारम्परिक और धार्मिक दृष्टिकोण से पौराणिक कथाओं और महाकाव्यों में राम के जो गुण निरूपित किए गए हैं और जिन्होंने राम को भगवान का अवतार तक बना दिया है क्या वास्तव में वे इतने महान थे भी कि उन पर गर्व कर सकें? माइकेल द्वारा पेश की गई राम की प्रस्तुति राम को एक तुच्छ रूप में, एक ऐसे डरपोक और पाखण्डी चरित्र के रूप में दर्शाती है जिसमें निडरता की निहायत कमी है। इसके विपरीत रावण ऐसा चरित्र है जिसको माइकेल ने राम से श्रेष्ठ दिखाया है। उन्होंने दिखाया कि रामायण में यह रावण ही था जिससे हम कुछ काम की बात सीख सकते हैं, क्योंकि यह राम नहीं बल्कि रावण था जो अनुकरणीय गुण रखता था। माईकेल ने इन्द्रजीत को भी एक महान चरित्र के रूप में चित्रित किया और यहाँ तक कि लक्ष्मण व भरत का चरित्र चित्रण भी राम से भी कुछ हद तक अच्छी रोशनी में किया। इस व्याख्या ने इस देश के नवजागरण में सोच-विचार के ढंग में नया रुझान दिखा दिया। खैर जो भी हो, यहाँ मेरा मकसद इन नए साहित्यिक विचारों में कौन सा सही था और कौन सा गलत, इसकी विस्तृत चर्चा में जाना नहीं है। क्योंकि, यह सवाल इस चर्चा के विषय से सीधे कोई ताल्लुक नहीं रखता। मैं जो कुछ परिलक्षित करना चाहता हूँ वह यह है कि राममोहन राय द्वारा शुरू किए गए धार्मिक सुधारों के आन्दोलन को एक नई दिशा देने, उसमें एक नया चिन्तन लाने के लिए नवजागरण या मानवतावादी धारा में सबसे ज्यादा विद्यासागर और फिर माइकेल पहली बार एक विच्छेद लाए थे। यही वजह है कि हालांकि विद्यासागर और माइकेल में आप कई बाहरी अन्तर देखते हैं पर भीतर से सारतः उनकी सोच में काफी कुछ समानता है। ऐतिहासिक दृष्टि से जो सम्बन्ध इन दोनों महापुरुषों के बीच पैदा हुआ वह हमारे लिए एक अमूल्य निधि है। विद्यासागर की इस भूमिका को छोड़कर एवं उनके युग को पार कर आने के बाद हम देखते हैं कि हमारे देश में नवजागरण आन्दोलन पुनः धार्मिक सुधार के रास्ते पर चलने लगा। एक ओर तो ब्रह्म समाज का प्रबल ज्वार आया। सुधार के जरिए हिन्दू समाज को विपथगमन से रोकने और दोष-खामियों से मुक्त करने के लिए ही यह आया। दूसरी ओर ब्रह्म समाज के इस आन्दोलन की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू धर्म के पुनरुत्थानवाद का जबरदस्त आन्दोलन छिड़ गया था।

धर्मोन्मुख भारतीय राष्ट्रवाद

हिन्दू धर्म की परम्पराओं को अपनाते हुए हिन्दू समुदाय को जात-पात व अन्य बुराइयों से मुक्त करने के उद्देश्य से हिन्दू धर्म के सुधारक आगे आए थे। इस दौर में ही रामकृष्ण परमहंस का आविर्भाव सम्भव हुआ। हिन्दू धार्मिक सुधार आन्दोलन ने बाद में विवेकानन्द में एक नया रूप लिया। दरअसल, विवेकानन्द इसी पुनरुत्थानवादी आन्दोलन की एक विस्मयकारी पैदाइश हैं। उन्होंने नवजागरण आन्दोलन को केवल धार्मिक सुधार की ही चार दिवारी में सीमाबद्ध नहीं रखा। उन्होंने पूजा पाठ और सिद्धि साधना के स्थान पर कर्मयोग पर जोर दिया। मानवतावादी आदर्शों और यूरोप के आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन को हिन्दू पुनरुत्थानवादी लहर के साथ मिलाकर असल में उन्होंने इस आन्दोलन को एक नया उभार दिया और इस तरह उन्होंने देश के लोगों में एक गहरा राष्ट्रीय स्वाभिमान और देशप्रेम बोध पैदा किया।

इसलिए, एक तरह से विवेकानन्द ही इस देश में राष्ट्रीय भावना या राष्ट्रीय स्वाभिमान के जनक थे। हालांकि उन्होंने खुद कभी राजनैतिक आन्दोलन में हिस्सा नहीं लिया। राष्ट्रीय स्वाभिमान और देश प्रेम आगे चलकर स्वाधीनता आन्दोलन या राष्ट्रवादी आन्दोलन के रूप में चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ। हालांकि गौरतलब बात यह है कि विवेकानन्द ने प्राचीन भारत के आध्यात्मिक गौरव को अपनाते हुए वेदान्त की भावना में राष्ट्रीय स्वाभिमान व देशप्रेम की भावना को महसूस कराना शुरू किया था, जाग्रत किया था। मुख्यतः इसी कारणवश या यूं कहें कि विवेकानन्द द्वारा शुरू की गई इस धारा में विच्छेद लाने की विफलता के कारणवश, बाद में जो देशव्यापी जोरदार आजादी आन्दोलन पनपा, वह हिन्दू धर्मोन्मुखी राष्ट्रवाद ही रह गया। सामन्तवाद को ढहा कर पूँजीवाद द्वारा सत्ता हथियाने के बाद प्रगति का जो पहिया गतिशील हुआ था उसे इसके सभी पूर्ववर्ती प्रगतिशील विचारों के सारतत्व सहित चालू नहीं रखा जा सका क्योंकि पूँजीवादी कूच धीरे-धीरे मन्दा पड़ता गया और धर्म के साथ समझौता करके पूँजीवाद ह्रासोन्मुख हो गया और सिनीज़्मि जो हर व्यक्ति और चीज में दोष दर्शिता का सिद्धान्त है, उसको पैदा करके पलायनवादी हो गया।

आजादी आन्दोलन जो इस तरह चल रहा था और क्रमशः गति पकड़ता जा रहा था वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद को यहाँ से खदेड़ कर अनिवार्यतः एक राष्ट्रीय बुर्जुआ राष्ट्र और एक जनतान्त्रिक समाज व्यवस्था कायम करने का आन्दोलन था। बुर्जुआ ने इस देश में अपने उद्योग-धन्धे,

(शेष पृष्ठ 4 पर)

धर्म, नीति-नैतिकता व धर्मनिरपेक्षता...

(पृष्ठ 3 का शेष)

कल-कारखाने विकसित करने और मालामाल होने के लिए उनको दिन दुगुने रात चौगुने बढ़ाने की अपनी आकांक्षा से प्रेरित होकर इस आन्दोलन के नेतृत्व में कदम रखा था। इसलिए उन्होंने विदेशी माल का बायकॉट करने के लिए लोगों का आह्वान किया था। यह नारा इसलिए उठाया गया था कि वे अपने खुद के नेतृत्व और नियन्त्रण में पूँजीवाद निर्मित करना और अपने उद्योगों को विकसित करना चाहते थे। इसलिए ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध एक संघर्ष छिड़ गया। बुर्जुआ यहाँ उभारशील राष्ट्रीयतावादी आदर्शों को औजार के रूप में इस्तेमाल करके देश के अवाम को अपने पीछे जुटाकर विदेशी शासकों के खिलाफ अपना संघर्ष चलाना चाहता था। हालांकि इस बात का जिक्र मैं पहले ही कर चुका हूँ कि उस युग में जब पूँजीवाद निर्मित करने की आकांक्षा से भारत में स्वाधीनता आन्दोलन पैदा होने की परिस्थितियाँ तैयार हुई थी, यूरोप में पूँजीवाद की प्रगतिशील भूमिका निःशेष हो चुकी थी। वहाँ बुर्जुआ वर्ग ही खुद फासीवाद और नस्ली मनोग्रन्थि की ओर अपने व्यापक अभियान में जुटा हुआ था और जनतांत्रिक आदर्शों को पैरों तले रौंद रहा था। बुर्जुआ क्रान्ति के पहले वाले दिनों के मानवतावाद की यौवन से भरपूर, समझौताहीन, क्रान्तिकारी, धर्मनिरपेक्ष भाव, रंग-ढंग अब वहाँ कहीं नहीं बचा था। क्योंकि पूँजीवाद विकसित करने की अपनी आकांक्षा से यह स्वाधीनता आन्दोलन भारत में विश्व पूँजीवाद की इस ह्रासोन्मुख अवस्था में शुरू हुआ और इस आन्दोलन के नेतृत्व में बुर्जुआ वर्ग था इसलिए प्रतिक्रियावादी अन्तर्राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का अभिन्न अंग होने के नाते यहाँ जनतंत्र की धारणा, मानवतावादी संस्कृति और उसके सब विचार यूरोप के मानवतावाद की उस बुढ़ापाग्रस्त और ह्रासोन्मुख धारा से प्रभावित हुए।

उनमें विश्व पूँजीवादी क्रान्ति के शुरूआती दौर का क्रान्तिकारी मिजाज या जोश-खरोश नहीं था। महज पूँजीवाद-विरोधी मजदूर वर्ग की क्रान्ति की भयग्रन्थि उनमें काम करने की वजह से वे अब सामन्ती ढाँचे को पूर्णतः ढहा कर और साम्राज्यवाद के विरुद्ध समझौताहीन लड़ाई छेड़कर एक क्रान्तिकारी सामाजिक बदलाव लाने की हिम्मत-हौसला और ताकत भी गवां चुके थे। अब उनका वर्ग चरित्र किसी तरह भी क्रान्तिकारी नहीं था। उनके द्वारा साम्राज्यवाद के विरुद्ध पहले जो भी संघर्ष छेड़ा गया हो, चरित्र में अब वे साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के साथ समझौतापरस्त थे। वे विदेशी वित्तीय पूँजी और सामन्तवाद के साथ समझौता करके देश में पूँजीवाद निर्मित करना चाहते थे। इस प्रयास में उन्हें लड़ने के लिए विवेकानन्द में अपना वैचारिक हथियार मिल गया क्योंकि विवेकानन्द ने भारत के आध्यात्मिक गौरव के भाव और परम्परागत आदर्शों को वाणी दी थी। यह यूरोप की पूँजीवादी क्रान्ति के शुरूआती दौर के मानवतावाद की क्रान्तिकारी, साहसी व निडर भावना से काफी परे थे।

मैं पहले ही जिक्र कर चुका कि यूरोप में मानवतावाद अपने शुरूआती दौर में चर्च के प्रभुत्व और ईश्वर की धारणा का विरोध करते हुए और इस बात पर जोर देते हुए हुआ था कि जो भी तर्कसंगत नहीं है एवं निरीक्षण-परीक्षण, प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरने योग्य नहीं है उसे छोड़ देना चाहिए। शुरूआत में मानवतावाद ने धर्म के साथ समझौता नहीं किया था। यह धर्म के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त होकर धर्मनिरपेक्ष था। धर्मनिरपेक्षता का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है किसी भी अति प्राकृतिक अर्थात् अलौकिक सत्ता को मान्यता न देना। इसका सही सारतत्व यह है कि यह सत्य के तौर पर केवल उसी को मान्यता देता है जो पार्थिव है, इसी जगत से सम्बन्धित है। इसलिए सत्य को वस्तु में ही खोजना चाहिए और कहीं नहीं और इस खोज में विज्ञान ही एकमात्र साधन है। अतर्कसंगत, अनैतिहासिक और असत्य कोई भी चीज हो वह गैरकारगर और नुकसानदेह है, चाहे यह सदियों से विद्यमान हो। जो चीज प्रमाणित करने योग्य नहीं चाहे वह ईश्वर हो या भूत-प्रेत वह मान्य नहीं हो सकती। ऐसी थी धर्मनिरपेक्षता की मुख्यधारा जो कि क्रान्तिकारी थी और जिसने सदियों पुराने इस विचार कि 'राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है' के विरुद्ध लड़ने और धार्मिक अन्धविश्वासों पर आधारित पुराने व अतर्कसंगत विचारों को छोड़ने की लोगों को नसीहत दी थी। इसका मुख्य उद्देश्य सामन्ती समाज व्यवस्था उखाड़ फेंकना था और औद्योगिक क्रान्ति, व्यक्ति स्वाधीनता और आजादी के जो भी परिपूरक था, उसी को समाज में लाना था।

यूरोप में यही भावना जागी थी। यह शुरूआत थी। इसके अनुसार धर्म किसी का व्यक्तिगत विश्वास या आस्था का मामला था। इसलिए अगर धर्म को राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा, सामाजिक सिद्धान्तों, विज्ञान आदि में घुसेड़ देने या थोप देने की कोशिश की गई होती तो इसने केवल अड़चनें ही पैदा की होती। इसलिए इन सब को धार्मिक संरक्षण से मुक्त रखने के लिए उस शुरूआती दौर की धर्मनिरपेक्षता के इन पहलुओं ने इस बात पर जोर दिया कि राजसत्ता की ओर से धर्म को न तो दबाया जाए और न ही उसे प्रश्रय दिया जाए। जनतांत्रिक समाज व्यवस्था अगर धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद को आत्मसात करना चाहती है तो उसे न तो धर्म को दबाना चाहिए और न ही इसको रियायत देनी चाहिए। कोई भी धार्मिक संस्था राज्य की सहायता या संरक्षण का लाभ नहीं उठा सकेगी। कोई धर्म विश्वासी जिस भी धर्म में वह विश्वास करता है उसके धर्म-कर्म को मान सकता था। अगर कोई मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा या गिरजाघर जाना चाहता था तो वह उसके लिए स्वतंत्र था। किसी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में दखल देने का कोई सवाल ही नहीं था। लेकिन किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध धार्मिक सेवाओं या क्रियाकलापों में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था और न ही उसके लिए उसको जलील किया जा सकता था। यही वजह है कि धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद या जनतांत्रिक जीवन की धर्मनिरपेक्ष पद्धति और धर्मनिरपेक्ष संस्थाएं धार्मिक कर्मकाण्ड से कोई वास्ता नहीं रखती हैं और न ही वे किसी तरह धार्मिक सोच से प्रभावित होती हैं।

यूरोप का बुर्जुआ वर्ग, धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद की इस धारणा को जन-जीवन में और राज्य की राजनीति में ज्यादा आगे नहीं ले जा सका, फिर भी नींव के तौर पर यूरोप में मानवतावादी आन्दोलन ने धर्मनिरपेक्षता की भावना को आत्मसात करते हुए उनके मानसिक ढांचे, चरित्र की दृढ़ता, व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों, नारी-स्वतंत्रता की धारणा और मूल्यबोध आदि सबको एक जमाने में इस धारणा पर विकसित किया था।

लिहाजा, धर्मनिरपेक्षता यह मांग करती है कि राजसत्ता न तो किसी के धार्मिक विश्वास के मामले में दखल देगी और न ही धर्म के पक्ष में या इसके खिलाफ सत्ता का इस्तेमाल करेगी। लेकिन आप यहाँ भारत में राजसत्ता को न केवल धर्म को संरक्षण न देने की नीति का पालन नहीं करते पाएंगे, बल्कि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ भी यहाँ सर्व धर्म समभाव, सभी धर्मों को समान प्रश्रय देना लगा लिया है जो कि गलत है। महज इसी वजह से यूरोप में धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद ने इसके बाद के दौर में, अर्थात् बुर्जुआ वर्ग द्वारा अपने को सत्ता में मजबूती से कायम कर लेने के बाद धर्म और ईसाइयत के मूल स्वर से समझौता कर लिया था। इसलिए हमारे देश में बहुत सारे लोग यह नहीं समझते हैं कि धर्म को या उस मामले में, एक साथ सभी धर्मों को संरक्षण देकर धर्मनिरपेक्ष राजसत्ता अर्थात् सामाजिक, आर्थिक जीवन व राजसत्ता के काम काज को धार्मिक विचारों के प्रभाव से मुक्त करके धर्मनिरपेक्ष राजसत्ता कायम करना सम्भव नहीं है। सही मायने में धर्मनिरपेक्ष राज्य वह होता है जो किसी धार्मिक कर्मकाण्ड या संस्था को संरक्षण प्रदान नहीं करता। लेकिन हमारे देश के नेता लोग दावे के साथ यह कहने में जरा भी नहीं हिचकिचाते कि सभी धर्मों को बराबर प्रोत्साहन देना एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का चरित्र होता है। मैं निश्चय ही ये कहूँगा कि अभी तक यूरोप में ऐसा मामला नहीं है। इसके बारे में मैंने एकबार मजाक करते हुए कहा था कि इस देश में हर चीज बड़ी अजीब है। धर्म के आधार पर जब पाकिस्तान बना तो उन्होंने उसको धर्म को जो वहाँ इस्लाम है, संरक्षण देने के कारण एक धर्मीय राज्य कहा था, तो उस हिसाब से भारत और कुछ नहीं बल्कि एक बहुधर्मीय राज्य है क्योंकि ये लोग यहाँ सभी धर्मों को बराबर संरक्षण देते हैं। इस विषय में तब धर्मनिरपेक्षता कहाँ है?

हमारी संसद पर एक नजर डालिए। यह तथाकथित समाजवादी, मार्क्सवादी और साम्यवादी सांसदों से भरी पड़ी है। ये इतनी ज्यादा ऊँची-ऊँची शैक्षणिक योग्यताएं रखते हैं और उनके नामों के पीछे कई बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लगी हुई हैं। बातें बनाने और भाषण झाड़ने में ये कितने पटु हैं, अंग्रेजी में कितने धाराप्रवाह बोलने वाले हैं। वे कभी श्रोताओं को हंसा देते हैं, कभी रुला देते हैं। वे बड़ी आसानी से ऐसा कर सकते हैं और फिर अपनी बारी में खुद भी हंसने, रोने और उछल-कूद करने लगते हैं। वे इतने ज्यादा वाकपटु हैं पर उनकी बड़ी-बड़ी बातों का सारतत्व बहुत कम होता है। कोई भी बुनियादी सवालों को नहीं उठाता, उन सवालों को नहीं उठाता जो कि वास्तव में प्रासंगिक हैं। जैसे उदाहरण के लिए, इतिहास को उद्धृत करके कोई भी नहीं पूछता कि मानवतावादी आन्दोलन जो कि धार्मिक सुधारों के जरिए राममोहन राय से शुरू हुआ था और विद्यासागर तक पहुँचा था और जो इसकी धारा में धर्मोन्मुखता से विच्छेद का बिन्दु है, कैसे विद्यासागर के बाद के दौर में धर्म के साथ समझौता कर सका। कोई भी इस विपदा की बात नहीं करता जो देश पर आकर पड़ी क्योंकि तभी से राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन इस समझौतापरस्त धारा की निरन्तरता में संचालित किया जाने लगा। हमारा यह विशाल देश, यह महान राष्ट्र हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि बहुत सारे धार्मिक सम्प्रदायों का पच्चीकारी की तरह एक रंग-बिरंगा समावेश है। यह महज इसलिए है कि हमारे आजादी आन्दोलन को धर्मोन्मुख राष्ट्रवाद से परिचालित किया गया, भिन्न-भिन्न धर्म विश्वासों का अनुसरण करने वाले, भिन्न-भिन्न जातियों से सम्बन्ध रखने वाले लोगों को राष्ट्रीय चेतना की धर्मनिरपेक्ष भावना से प्रभावित नहीं किया जा सका। मानवतावादी सिद्धान्तों और नैतिक मूल्यों की भावना भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताओं, जन-जातियों, समुदायों आदि के जीवन में पनपाई नहीं जा सकी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजनैतिक तौर पर हम एक राष्ट्र में विकसित हो गए हैं परन्तु हमारे धार्मिक विश्वासों, आचरण-व्यवहारों, संस्कारों और रीति-रिवाजों आदि में आज भी हम सब अलग-अलग हैं। हम में से कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई सिख है, तो कोई ईसाई है। हममें से कोई बंगाली, कोई बिहारी, कोई पंजाबी, कोई मद्रासी या कोई कुछ और है। मानो इतना ही काफी नहीं हो, हिन्दुओं में भी कोई सवर्ण हिन्दू है तो दूसरों पर अनुसूचित जाति का लेबल लगा हुआ है। कोई ब्राह्मण है, कोई कायस्थ है, तो कोई दूसरी किसी तथाकथित नीची या पिछड़ी जाति का है, और कोई 'अछूत' हरिजन है। हम अनगिनत समुदायों में बंटे हुए हैं और निरपवाद रूप से इसकी परछाई राजनीति पर भी पड़ती है। फलस्वरूप, जनतांत्रिक सिद्धान्त और नैतिक मूल्य हमारे जीवन के हर हिस्से को प्रभावित नहीं कर सके। राजनैतिक नेता सत्ता में आने से पहले इन फूटपरस्त भावनाओं के विरुद्ध कुछ-कुछ बोलते थे परन्तु आजादी हासिल होते ही सत्ता में गद्दीनशीन हो जाने के बाद, निहित स्वार्थों और मालिक वर्ग ने अपने शोषणमूलक शासन को बचाए रखने के लिए जात-पात और साम्प्रदायिक भावनाओं के साथ खेलना शुरू कर दिया। दूसरी ओर राजनैतिक नेता भी लोगों पर अपना प्रभाव बनाए रखने के लिए ही फूटपरस्त भावनाओं का इस्तेमाल करने की कोशिश करते हैं।

आप एक चीज नोट करेंगे और बुजुर्ग पीढ़ी मेरी बात की पुष्टि करेगी, वह यह कि स्वाधीनता आन्दोलन काल में जब उस समय के बंगाल के नौजवानों ने अपने माँ-बाप के एतराज के बावजूद भी विवेकानन्द के आदर्शों की प्रेरणा से 'अछूतों' और सभी समुदायों के लोगों को शामिल कराके जो साझी सामुदायिक पूजा शुरू की थी, उसमें सामुदायिक पूजा के लिए वर्तमान में देखी जा रही यह अंधी दौड़ नहीं थी। क्योंकि स्वाधीनता आन्दोलन और जनवादी आन्दोलन उस समय एक क्रान्तिकारी भावना रखता था। भले ही यह प्रतिक्रियावादी, ह्रासोन्मुख मानवतावादी आदर्शों के प्रभाव में था लेकिन फिर भी जिस हद तक इसने साम्राज्यवादी अधीनता से आजादी पाने की लड़ाई लड़ी और जनतांत्रिक संस्थाओं को स्थापित करने की कोशिश की तथा पूँजीवाद के विकास का रास्ता खोला उस हद तक इसकी भूमिका भारत में सामाजिक प्रगति के हित की पूरक थी। ऐतिहासिक जरूरत के तौर पर इसको धार्मिक नैतिक मूल्यों के विरुद्ध खड़ा होना पड़ा और आधुनिक विज्ञान व धर्मनिरपेक्ष नैतिक मूल्यों का झण्डा ऊँचा उठाना पड़ा। लेकिन आजादी के बाद के दौर में एक ओर तो राजनेताओं और उनके राजनैतिक संगठनों कांग्रेस आदि ने और दूसरी ओर तथाकथित कम्युनिस्टों व समाजवादियों आदि ने चुनावों के समय वोट बटोरने की बात को मद्देनजर रख कर पूजाओं को बढ़ावा देना और पूजा समितियों को संगठित करना शुरू कर दिया। इसने सामुदायिक पूजाओं की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी ला दी और इसके साथ कदम से कदम मिलाते हुए अतीत के उन सब धार्मिक अन्धविश्वासों, कुसंस्कारों और धार्मिक कर्मकाण्डों को फिर उकसाया जा रहा है। आजादी आन्दोलन की लहर ने सामाजिक जीवन की कुछ गन्दगी को साफ किया था लेकिन आजादी के बाद फिर समाज में हर स्तर पर गन्दगी के ढेर लगते जा रहे हैं। साथ ही औद्योगिक जीवन को केन्द्र करके उच्च तकनीकी शिक्षा वाले, किसी भी चीज में विश्वास न करने वाले जड़विहीन लोगों को लेकर एकाएक एक खास साधन-सम्पन्न उच्च तबका पैदा हो गया है। ये लोग करीब-करीब दिखावापसन्द से लगते हैं। ये अपने बच्चों में

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सब के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार की गारंटी की मांग के लिए व संस्कृति पर बढ़ते हमले के खिलाफ धरना

पटना (बिहार) : ''हमारा देश लोक कल्याणकारी देश है। इसमें आम जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना सरकार का कर्तव्य और संवैधानिक दायित्व है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी इसे सरकार पूरा नहीं कर सकी है। जबकि कोई सरकार दावा और वादा करने में पीछे नहीं है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक की स्थिति भयावह है। आज संपूर्ण शिक्षा ध्वस्त होने के कगार पर है। यह इतनी महंगी हो गयी है कि आम लोगों की पहुँच से बाहर है। केन्द्र की भाजपा की सरकार पाठ्यक्रमों में तेजी के साथ उलट-फेर कर शिक्षा का सांप्रदायीकरण कर रही है। दूसरी ओर, पूरी स्वास्थ्य व्यवस्था लचर स्थिति में है। अस्पतालों में डॉक्टर नहीं, नर्स नहीं, दवाएँ नहीं है। इलाज का कोई इंतजाम नहीं है। भूमंडलीकरण जब आया था तो सभी सरकारों ने हो-हल्ला मचाया था कि नौकरियों की बाढ़ आ जायेगी और अभी भी दावे किए ही जा रहे हैं। जितने दावे और वादे हो रहे हैं उतनी ही बेरोजगारों की फौज बढ़ती जा रही है। क्या मरणासन्न पूंजीवादी व्यवस्था में किसी भी सरकार के लिए यह काम कर पाना संभव है?'' उक्त बातें ऑल इंडिया डीएसओ, ऑल इंडिया डीवाईओ और ऑल इंडिया एमएसएस के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित धरने को संबोधित करते हुए छात्र, युवा और महिलाओं के नेताओं ने कही।

वक्ताओं ने आगे कहा कि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार से वंचित लोग विद्रोही न बन जाएँ इसलिए सरकार ने अपसंस्कृति

का हमला तेज कर दिया है। अश्लीलता, नग्नता और नशाखोरी की दलदल में छात्रों-युवाओं को धकेला जा रहा है। अश्लील गाने, पोस्टर व विज्ञापन परोसे जा रहे हैं। वक्ताओं ने कहा कि छात्रों, युवाओं और महिलाओं का जुझारू आंदोलन खड़ा करना वक्त की जरूरत है। धरने को पटना विश्वविद्यालय की सेवानिवृत्त प्राध्यापिका प्रो. भारती एस कुमार, टी के घोष एकाडेमी के सेवानिवृत्त शिक्षक व मानवाधिकार कार्यकर्ता श्री आर एन झा, ऑल इंडिया डीएसओ के राज्याध्यक्ष सूर्यकर जितेन्द्र, राज्य सचिव अनिल कुमार, ऑल इंडिया डीवाईओ के राज्य नेता उमा शंकर वर्मा, अनिल कुमार चांद, रूपेश कुमार तथा ऑल इंडिया एमएसएस की अनामिका आदि ने संबोधित किया जबकि अध्यक्षता एआईएमएसएस की राज्य सचिव साधना मिश्रा ने की। अन्य वक्ताओं में शिवचन्द्र पासवान, सरोज कुमार सुमन, विकास कुमार, सुमन लता मौर्य, राजू कुमार, निकोलाई शर्मा आदि प्रमुख थे।

नसबंदी कैंप में महिलाओं की मौत के दोषियों को सजा देने की मांग पर जुलूस

दुर्ग (छ.ग.) : छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले में सरकारी नसबंदी शिविर में महिलाओं की हुई दु:खद मृत्यु, राज्य सरकार की घोर लापरवाही, आपराधिक व्यवहार, राज्य सरकार की लीपापोती, स्वास्थ्य मंत्री की आदतन अपराधी की तरह लोगों और मरणासन्न मरीजों के बीच हँसना-मुस्कुराना, आर.एस.एस. के एक नेता की फैक्टरी में बनी नकली व घटिया दवाइयां खरीद कर लाखों लोंगो के जीवन से किये गये खिलवाड़ के खिलाफ एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) जिला दुर्ग के कार्यकर्ताओं ने कचहरी चौक पर 14 नवम्बर को जोरदार प्रदर्शन कर राज्यपाल के नाम ज्ञापन सौंपा।

पार्टी ने इस नसबंदी शिविर में महिलाओं की मौत के जिम्मेदार अफसरों को बर्खास्त कर हत्या का मुकदमा दर्ज कर कड़ी से कड़ी सजा देने, मृतकों के परिवारों को 50-50 लाख रुपये मुआवजा देने, ऐसे कार्यक्रम बंद कर जनता को सही तरह से स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की मांग की।

कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती का संदेश ....

(पृष्ठ 1 का शेष)

हैं, समाज में दोनों के अधिकार समान नहीं हो सकते हैं। पूँजीपति वर्ग जो समान अधिकारों और जनतन्त्र की बात करता है कभी भी बराबरी को सुनिश्चित नहीं कर सकता है। यह केवल समाजवाद में जहाँ निजी सम्पत्ति का खात्मा कर दिया गया है और उत्पादन के साधनों पर सामाजिक मालिकाना स्थापित कर दिया गया है और जहाँ उत्पादन का उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं बल्कि समाज की बढ़ती भौतिक और सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा करना होता है। पूँजीवादी समाजों में जनतन्त्र होता है मुट्ठी भर अमीरों के लिए जबकि समाजवाद में जनतन्त्र 90% मेहतनकश जनता के लिए होता है। अत: समाजवाद में जो जनतंत्र होता है उससे बहुत ही सीमित होता है बुर्जुआ जनतन्त्र का आयाम। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि बुर्जुआ जनतन्त्र शोषणमूलक व्यवस्था की रक्षा करता है जबकि सर्वहारा जनतन्त्र शोषण का मुकाबला करता है व इसे निर्मूल करता है।

यह व्याख्या करता है कि क्यों पूँजीवाद में लोगों की खरीद शक्ति तेजी से और निरन्तर गिरती जाती है और इस तरह बाजार संकट पैदा करती है; जबकि समाजवाद में लोगों की खरीद शक्ति बढ़ती जाती है। इसी तरह रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं और समाज के चौतरफा विकास के लिए परिस्थिति तैयार करते हैं। इससे ही खुलासा होता है कि कैसे रूस जैसा यूरोप का एक अति पिछड़ा देश क्रान्ति के बाद सामाजिक उत्पादन के सभी क्षेत्रों में इतने लम्बे डग भर सका और विज्ञान, तकनीकी, कला-साहित्य, संगीत, नृत्य, ड्रामा, खेल-कूद मे भी बिना किसी दूसरे देश की सहायता के, बल्कि शत्रुतापूर्ण घेराबन्दी में रहते हुए भी इतनी शानदार उपलब्धियाँ हासिल कर सका। सोवियत रूस ने विकास का वो स्तर हासिल किया जिसे हासिल करने में अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी जैसे सर्व प्रमुख पूँजीवादी देशों को कम से कम 200 साल लगे थे। ऐसा ही चीन के मामले में हैं। यह बहुत ही पिछड़ा देश था और अकाल की धरती के रूप में जाना जाता था। चीन ने 1949 में आजादी हासिल की जबकि भारत दो साल पहले 1947 में आजाद हुआ और आजादी से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था चीन के मुकाबले बहुत मजबूत थी। चीन की आबादी की हालत भी भारत की आबादी से ज्यादा बदतर थी। आजादी के 20 साल के अन्दर चीन ने अपनी ज्यादातर मूलभूत समस्याओं का समाधान कर लिया था। अपने उद्योग और खेती को विकसित किया एवं बेरोजगारी की समस्या का समाधान कर दिया तथा तकनीकी व विज्ञान के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ हासिल की थी। जबकि इसी अवधि के दौरान भारत में जीवन के सभी क्षेत्रों–आर्थिक, सांस्कृतिक, नीति-नैतिकता में संकट घनघोर हो उठा और तमाम दूसरे पूँजीवादी देशों में हालात ऐसे ही हैं। समाजवादी देशों की सफलता की कहानियाँ लोगों को बताने में पूँजीपति वर्ग मौत जैसा खौफ खाता है। जैसा कि लेनिन ने बहुत पहले दिखाया था पूँजीवाद मरणासन्न और प्रतिक्रियावादी हो गया है। आज यह समाज को कुछ भी अच्छा नहीं दे सकता है; यह जीवन के सभी क्षेत्रों में संकट पैदा कर रहा है; यह केवल समाज में अभी तक भी जो कुछ महान, उदात्त और श्रेष्ठ बचा है उसे तबाह कर रहा है। यह जीवन को ही तबाह कर रहा है। समाज मुक्ति के लिए छटपटा रहा है।

केन्द्रीय कमेटी की तरफ से मैं कॉमरेडों का आह्वान करता हूँ कि वे क्रान्ति के उद्देश्य के प्रति ज्यादा से ज्यादा समर्पित हों।

महान नवम्बर क्रान्ति जिन्दाबाद!

एसयूसीआई (सी) ने सौंपा शिक्षामंत्री को ज्ञापन

महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) : शिक्षा सम्बन्धी ज्वलंत मांगों के समाधान बारे एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) हरियाणा राज्य कमेटी की ओर से 22 नवम्बर को शिक्षामंत्री, हरियाणा सरकार को एक ज्ञापन सौंपा गया। शिक्षा मंत्री रामबिलास शर्मा को ज्ञापन देने गये एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के शिष्टमण्डल का नेतृत्व पार्टी के राज्य कमेटी सदस्य कॉ. राजेन्द्र सिंह एडवोकेट ने किया। उनके अलावा किसान नेता बलबीर सिंह, रामकुमार, दलीप सिंह, रूबीना, पवन, सुनील, सुभाष, जी.सी. नायक, अजय सिंह, जयसिंह आदि भी शिष्टमण्डल में शामिल थे।

ज्ञापन में शिक्षा मंत्री व राज्य की बीजेपी सरकार से अनुरोध किया गया कि जनविरोधी शिक्षा नीति और उनके दुष्परिणामों से लोगों को राहत प्रदान करे और जनहित में निम्नलिखित मांगें पूरी करे : स्कूलों में पहली कक्षा से पास-फेल प्रणाली और 5वीं और 8वीं के बोर्डों को फिर से बहाल किया जाए, शिक्षण संस्थानों को पर्याप्त अनुदान दिया जाए। शिक्षा नि:शुल्क हो एवं गुणवत्तापूर्ण हो, शिक्षा के निजीकरण-व्यापारीकरण, पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) की नीति, समैस्टर प्रणाली व मूल्यांकन की ग्रेडिंग प्रणाली वापस ली जाए तथा अंकों के आधार पर पूर्ववत परिणाम तैयार किये जाएं, पाठ्य पुस्तकों की उपलब्धता यथाशीघ्र सुनिश्चित की जाए, सभी स्कूलों में पर्याप्त स्थाई शिक्षकों की नियुक्ति की जाए। पात्रता परीक्षा की शर्त हटाई जाए, वैज्ञानिक, धर्मनिरपेक्ष व जनवादी शिक्षा लागू की जाए, पाठ्यक्रम में रूढ़िवाद, धार्मिक अंधविश्वास व कुसंस्कार को बढ़ावा देना बंद किया जाए, हमारे देश के नवजागरण काल के मनीषियों और आजादी आंदोलन की महान हस्तियों, खासकर समझौताहीन संघर्ष की धारा के क्रान्तिकारियों के जीवन-संघर्ष की गौरवगाथाओं को पाठ्यक्रमों में उचित स्थान दिया जाए, देहात में विज्ञान का विषय पढ़ाने का उचित प्रबंध किया जाए, प्रदेश बजट का कम से कम 20 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाए।

डीजल पर वैट लगाने का विरोध

मुख्यमंत्री का पुतला फूंकते हुए एसयूसीआई (सी) के कार्यकर्ता

रिवाड़ी (हरियाणा) : हरियाणा की बीजेपी सरकार द्वारा डीजल पर लगाये गये वैट के खिलाफ और गंगायचा टोल प्लाजा को बंद करने की मांग पर एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) कार्यकर्ताओं ने 26 नवम्बर को विक्षोभ प्रदर्शन किया और मुख्यमंत्री, हरियाणा सरकार का पुतला फूंका।

प्रदर्शनकारियों को पार्टी के जिला सचिव राजेन्द्र सिंह, किसान नेता कॉ. रामकुमार, मजदूर नेता कॉ. राजबीर, कॉ. करण सिंह आदि ने सम्बोधित किया।

मासूम बच्ची से बलात्कार के खिलाफ विक्षोभ

पिलानी (राजस्थान) : 3 साल की मासूम बच्ची के साथ हुए बलात्कार के खिलाफ बाजार पार्क में ऑल इण्डिया डीवाईओ और ऑल इण्डिया डीएसओ के संयुक्त बैनर तले 30 नवम्बर को विक्षोभ प्रदर्शन किया। इस शर्मनाक घटना के प्रति लोगों में जबरदस्त गुस्सा था।

बाद में हुई सभा का संचालन एआईडीवाईओ के पिलानी सचिव डा. रविकांत ने किया। सभा को डीवाईओ के राज्य सचिव कॉ. शंकर दहिया, राजेन्द्र सिहाग और डीएसओ के राज्य संयोजक दीपक दहिया व जयपुर इकाई के प्रशांत ने सम्बोधित किया। काम्सोमोल के बच्चे भी शामिल हुए।

धर्म, नीति-नैतिकता व धर्मनिरपेक्षता...

(पृष्ठ 4 का शेष)

पूर्ववर्ती पीढ़ियों के मुकाबले में बिल्कुल एक अलग नमूने की जीवन शैली की भावना पनपा रहे हैं। स्थिति यह है कि माताएँ अपनी बेटियों को 'ट्विस्ट डांस' के लिए ले जाती मिलेंगी, यह खटका महसूस करके कि इसके बिना युवा पीढ़ी जरूरत के लायक 'सुसंस्कृत' नहीं हो पाएगी। यह पूर्ववर्ती रुझान के बिल्कुल उल्टा रुझान है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, सामाजिक श्रेणीक्रम और अन्य सब फूटपरस्त भावनाओं में बंटे हुए लोग भी इनके रास्ते पर बढ़ते जा रहे हैं। इस देश की यह अन्तिम दशा क्यों हुई इसका आभास करने के लिए क्या कभी इन नेताओं ने जरा भी सोचा है?

इसका कारण खोजने के लिए आपको दूर नहीं जाना पड़ेगा। भारत को आत्मसम्मान और मर्यादाबोध के साथ उठने के लिए पहली बार जिस शख्स ने भारत को जाग्रत किया वह थे विवेकानन्द। उनकी महान भावना के द्वारा छेड़ा गया आन्दोलन अपने गठन में धर्म का सुर लिए हुए था। आगे चलकर राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के नेतागण राजनैतिक आन्दोलन को, स्वाधीनता आन्दोलन और मानवतावादी आदर्शों के लिए आन्दोलन या सांस्कृतिक आन्दोलन को धर्म के प्रभाव से मुक्त नहीं कर पाए। हिन्दू-सम्प्रदाय के धार्मिक अन्धविश्वासों और पौराणिक ग्रन्थों के विधि-विधानों के विरुद्ध राममोहन राय ने सामाजिक क्रान्ति के जिस स्तर को ऊँचा किया था और जिसे विद्यासागर ने बाद में और भी ऊँचे सोपान पर उठाया था उसे बुर्जुआ वर्ग के द्वारा आगे जारी नहीं रखा जा सका क्योंकि उनमें धर्म के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष की क्रान्तिकारी भावना नहीं थी और इससे भी बड़ी बात यह थी कि स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान क्रान्ति के भय के कारण भी वे ऐसा नहीं कर सके। स्वाधीनता आन्दोलन में सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति के कार्यक्रम को सम्मिलित करने का महत्व वे समझते ही नहीं थे जोकि इसका एक प्रमुख पहलू होना चाहिए था। उनका उद्देश्य आजादी के नारे पर अलग-अलग राष्ट्रीयताओं व जनजातियों को ब्रिटिश शासकों के खिलाफ बस राजनैतिक संघर्ष में ही जुटाना था। भारत के राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में जो परिवर्तन लाना चाहा था वह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं था। उन्होंने ब्रिटिश शासन के तहत उभरे पूँजीवाद के विकास के लिए इसे फायदेमंद समझ कर आजादी के बाद भी देश में वही प्रशासनिक व्यवस्था जारी रखनी चाही। इसलिए वे सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति के काम से बचते रहे। इसके फलस्वरूप इस समाज को चलन से बाहर हो गये पुराने विचारों, ब्राह्मणवादी प्रभुत्व, धार्मिक अन्धविश्वासों और सामंती कट्टरपन के चंगुल से मुक्त नहीं किया जा सका। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन मुख्यत: एक हिन्दू धर्मोन्मुख राष्ट्रवाद रह गया। जो आदमी हमारे स्वाधीनता आन्दोलन के नेता के तौर पर उभरा वह भी हिन्दू पैगम्बर सा प्रतीत हुआ। इस आन्दोलन के जो नेता थे उनमें से अधिकांश आचरण और जीवन शैली से हिन्दू धार्मिक नेता फबते थे। लेकिन हकीकत यह है कि इस देश में केवल हिन्दू ही नहीं रहते हैं बल्कि भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वासों को मानने वाले लोग यहाँ रहते हैं।

ऐसी स्थिति में, लोगों के धार्मिक विश्वास के प्रति अपील करके भिन्न-भिन्न धर्म मतों को मानने वाले लोगों को अपने साथ लगाने की इनकी कोशिश, सभी धर्मों का एक पैगम्बर बनने के तुल्य थी। उनके पास इसका कोई विकल्प नहीं था। अगर कोई एक मुस्लिम पैगम्बर की तरह दिखना चाहे तो उसे एक मुस्लिम फकीर का रंग-ढंग अपनाना पड़ेगा और अगर कोई सब धर्मों का एक साथ पैगम्बर दिखने की कोशिश करता है तो लाजमी तौर पर उसे एक बहरूपिया बन जाना पड़ेगा। कभी उसे हिन्दू फकीर की धोती-लंगोटी में रहना पड़ेगा और कभी एक मुस्लिम फकीर के चोगे-चोले में रहना पड़ेगा, तो कभी जैन फकीर के भेष में रहना पड़ेगा और इस तरह कभी किसी दूसरे के परिधान में रहना होगा वर्ना कोई केवल हिन्दुओं का ही फकीर हो सकता है, मुसलमानों या जैनियों का नहीं। मुस्लिम उसे आदर दे सकते हैं लेकिन एक दूरी बनाए रखेंगे और कुछ न कुछ संदेह भी पाले रखेंगे। यह अवश्यम्भावी है। जब तक धार्मिक आवेग काम करता रहेगा तो फलस्वरूप सन्देह घर कर जाना भी लाजमी है। यह अपने आप मिट नहीं सकता। इसलिए हुआ भी यही कि व्यक्तिगत प्रभाव से केवल मुट्ठी भर मुसलमानों को जरूर आन्दोलन के दायरे में खींच लाया गया लेकिन नेता लोग पूरे समुदाय के विश्वास को जीतने में विफल रहे। वे लोग मुस्लिम जनसाधारण के बहुमत को छू भी नहीं सके। क्या वे सभी लोग प्रतिक्रियावादी थे? क्या वे भी शोषण के शिकार नहीं थे? क्या वे आजादी की चाह नहीं रखते थे? क्या फिलिस्तीन में मुसलमान आजादी के लिए नहीं लड़ रहे हैं जहाँ भारत से भी ज्यादा कट्टरपंथी समाज है? क्या चीन, बर्मा और इण्डोनेशिया के मुसलमानों ने आजादी के लिए अपना खून नहीं बहाया? यहाँ तक कि भारत में यह लड़ाई शुरू हुई इससे पहले ही क्या कमाल पाशा के देश (तुर्की) के मुसलमान वहाँ जनतंत्र के लिए नहीं लड़े? क्या वहाँ मुस्लिम महिलाएं बुर्के से बाहर नहीं आ गईं? क्या वे धर्म सुधार के लिए आगे नहीं आए? तब इस बात की क्या तुक है जब यहाँ कहा जाता है कि मुसलमान सामाजिक हित के लिए नहीं लड़ते या यह कि वे प्रतिक्रियावादी हैं? सच्चाई यह है कि मुस्लिम जनसाधारण का दिल जीत कर उनको अपनी ओर इसलिए नहीं किया जा सका क्योंकि हमारा राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन हिन्दू धर्मोन्मुखी राष्ट्रवाद के सम्मोहन में विकसित हुआ था। मुझे व्यक्तिगत जानकारी है कि स्वाधीनता संग्राम में मुसलमानों को कहा जाता था कि, ''बेशक तुम हमारे कॉमरेड हो, भाई हो लेकिन याद रखना हमारे घर में तुम फूंक फूंक कर कदम रखना, हमारे परिवार से घनिष्ठता करने की कोशिश मत करना और इतना तो अवश्य ही ध्यान रखना कि तुम हमारी महिला सदस्यों पर नजर नहीं डालोगे। निस्संदेह हम एक साथ इकट्ठे खाना खा सकते हैं, हमारा मतलब है घर से बाहर, हम बस इतने ही आधुनिक हैं। अगर तुम हमारे घर पर आते हो तो हम अपने मेहमान की ही तरह तुम्हारा आदर-सत्कार करेंगे और तुम्हें मूल घर के बाहर बैठक या अतिथिशाला में बैठाएंगे। तुम्हारा खाना परोसने के लिए मैं एक थाली, काफी महंगी थाली का जुगाड़ करने की कोशिश करूँगा।'' अच्छा जब इस तरह से आप उनसे पेश आते थे तो भला एकता कैसे हो सकती थी? मेल-जोल, भरोसा और विश्वास कैसे पैदा हो सकता था? क्या गरमा-गरम भाषण इस सब को पैदा कर सकते थे? अगर हम खुद एक दूसरे से दूरी बनाए रखें और हर एक अपने-अपने ढंग से देखें तो हम कैसे एक हो सकते हैं? एकता बनाने के लिए हमें धर्म को आज इसके सही स्थान पर धकेलना होगा। यह सिर्फ किसी के अपने व्यक्तिगत विश्वास का मामला हो सकता है। सामाजिक रीति-रिवाज, आचार-विचार, शादी-ब्याह आदि सहित सभी राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक कार्यकलाप धर्म से मुक्त होने चाहिएं। धार्मिक शिक्षा व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। शिक्षा व्यवस्था धार्मिक नैतिक मूल्यों, पूर्वाग्रहों, अन्धविश्वासों और भूत-प्रत में झूठे विश्वासों-कुसंस्कारों से मुक्त होनी चाहिए जिनको हमारे बच्चों में शुरूआती वर्षों में ही कूट-कूट कर भरा जाता है। यह होना चाहिए नजरिया। लेकिन हमारे देश में यह नजरिया नहीं लिया गया। तथाकथित वामपन्थियों ने भी इसका प्रयास नहीं किया।

प्रसंगवश, हमारे देश की शिक्षण संस्थाओं में व्यवहार में प्रचलित धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद का एक नमूना दिखाने के लिए मैं एक उदाहरण देना चाहता हूँ। हम यह दावा करने का झुकाव रखते हैं कि भारतीय राज्य धर्मनिरपेक्ष है और हम लगातार धर्मनिरपेक्षता की कसम खाते हैं जबकि हमारी शिक्षण संस्थाओं में बच्चों के लिए पाठ्य-पुस्तकें ऐसी कहानियों से भरी पड़ीं हैं जो बताती हैं कि भगवान शंकराचार्य ने पैदल गोदावरी नदी पार की थी, दूसरे किनारे पर नदी पार जाने के लिए वे खड़ाऊ पहने हुए थे। शंकराचार्य एक महान ऐतिहासिक व्यक्ति थे, ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति जिनमें असाधारण गुण थे। वे भारत का गौरव थे। एक पूरे युग को उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान दिया था। शंकराचार्य का मूल्यांकन करने के लिए एक सही ऐतिहासिक रवैये से लोगों को लैस होने में मदद की जाए तो उनके महान गुण बच्चों पर असर छोड़ेंगे। लेकिन यहाँ व्यवहार में जो चालू है उसमें इसके नजरिए के करीब लगती भी कोई बात नहीं है। शिक्षा अधिकारियों ने उनको महज भगवान बना दिया है मानो वे साक्षात भगवान थे जो अपना काम पूरा होने पर इस लोक को छोड़ कर चले गए। क्या यह इतिहास है? लेकिन ऐसी अनाप-शनाप सामग्री इतिहास के नाम पर फीड की जा रही है, पढ़ायी जा रही है और फिर भी वे चाहते हैं कि हम मान लें कि यह शिक्षा व्यवस्था अपनी विषयवस्तु में जनतांत्रिक है।

अब, शिक्षकों को लीजिए जिन्हें यह सब सामग्री अपने छात्रों को पढ़ाने का काम दिया गया है। वे वेतन बढ़ाने की अपनी मांग के समर्थन में कितनी बार अकसर आन्दोलन करते हैं। वेतन बढ़वाने के लिए उनके आन्दोलन को मैं समर्थन देता हूँ क्योंकि आवश्यकतानुसार जरा सुख से गुजर-बसर करने के लिए उनका वेतन तो बढ़ना ही चाहिए। लेकिन तब देखिए, जब कभी वे शिक्षा व्यवस्था का जनवादीकरण करने के लिए दलील देते हैं तो काफी कुछ लिखते हैं, मिसाल के तौर पर वे एक स्कूल को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करने या प्रशासनिक योजनाओं में थोड़ी बहुत रद्दोबदल करने की मांग करते हैं। वे घण्टों तक चर्चा-बहस करते हैं लेकिन असल मुद्दों पर कुछ नहीं कहते जो समाज के अत्यावश्यक अंगों को नष्ट कर रहे हैं। सच्चाई यह है कि इन मुद्दों की सही पकड़ के बिना न तो जनवादी शिक्षा व्यवस्था कायम की जा सकती है और न ही जीवन का जनवादी ढंग और जनवादी नैतिक मूल्य प्रचलित हो सकते हैं। हर कोई कहेगा कि विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ तो बहुतायत में हैं लेकिन सच्ची शिक्षा जैसी कोई चीज कहीं नजर नहीं आती है। सच्ची शिक्षा क्यों नहीं है? इस पर वे चुप हैं। इस बात से सभी सहमत होंगे कि उन्नत सांस्कृतिक स्तर जोकि पैदा करना शिक्षा का काम समझा जाता है वह इस समाज में नहीं है। उच्च शिक्षा की डिग्रियाँ प्राप्त लोगों की संख्या तो बढ़ रही है। पहले इतने पढ़े लिखे नहीं थे। पढ़े-लिखे लोगों की इतनी विशाल संख्या आजादी आन्दोलन के दौरान वास्तव में नहीं पाई जाती थी। उस समय इतने ज्यादा स्नातक नहीं थे। लेकिन नौजवानों में संस्कृति और नीति-नैतिकता का एक स्तर स्पष्ट झलकता था। जनमत महत्व रखता था और कुछ प्रभाव भी रखता था। अगर कोई अन्यायपूर्ण या अनुचित काम करने का दोषी पाया जाता तो दूसरे उसे सीधा करने की अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझते थे। इसी उपाय से अन्याय करने वालों को रोकना सम्भव है। किन्तु आज कहीं भी कोई नैतिक जिम्मेदारी बोध काम नहीं करता है। ईमानदार लोग किसी तरह के झंझट में नहीं पड़ना चाहते हैं और जलालत की जिन्दगी जीते हैं। वे इस डर से प्रतिवाद नहीं करते कि ऐसा किया तो वे मारपीट व बेइज्जती को न्यौता दे देंगे। अत: इसके बारे में वे कुछ भी करना अपने बस की बात नहीं समझते। जो अपनी पढ़ाई खत्म करके बाहर निकलते जा रहे हैं वे इस अर्थ में अधिकांशत: टेक्नोक्रेट हैं कि जो विषय उन्होंने पढ़ा है या जिसमें उन्होंने डिग्रियाँ ली हैं उनमें वे काफी माहिर हैं लेकिन संस्कृति की मूल बात अर्थात् रुचि, नीति-नैतिकता का स्तर व न्याय-अन्याय की स्पष्ट धारणा उनमें पैदा नहीं हो रही है। छात्र विश्वविद्यालयों से हर तरह की डिग्रियाँ लेकर निकल रहे हैं लेकिन नीति-नैतिकता या क्या अच्छा है और क्या बुरा – इसकी उनमें कोई स्पष्ट धारणा ही नहीं है। एक समय देश में संस्कृति का जो ऊंचा स्तर था उसमें गिरावट आ रही है। किस कारण से ऐसा हो रहा है? समस्या की जड़ क्या है?

वैचारिक क्षेत्र में शून्यता

अब तक एक भूमिका निभाते आ रहे पुराने धार्मिक नैतिक मूल्यों और स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान पनपे देश प्रेम से प्रेरित नए मानवतावादी नैतिक मूल्य, समाज के प्रति फर्ज़ और मानव कल्याण का नया बोध–संक्षेप में बुर्जुआ मानवतावादी नैतिक मूल्य जो धार्मिक नैतिक मूल्यबोधों से घुलमिल गए थे–दोनों का प्रभाव समाज में काम कर रहा था। हालांकि आज ये दोनों ही आदर्श मात्र एक भ्रम है। ऐतिहासिक तौर पर ये दोनों गैरकारगर हो चुके हैं, सामाजिक प्रगति के सन्दर्भ में उनकी भूमिका नि:शेष हो चुकी है। यह इस वजह से हुआ कि जैसे मैं पहले ही कह चुका हूँ बुर्जुआ वर्ग खुद को सत्ता में मजबूती से जमा लेने के बाद प्रतिक्रियावादी हो गया और उसके एक वर्ग के तौर पर प्रतिक्रियावादी शासक गुट में तब्दील हो जाने के बाद, उसके सब आदर्श एक विशेष सुविधा मात्र बन कर रह गए। लोग अब समझते हैं कि बुर्जुआ शासक आदर्शों की बात धूमपट के तौर पर केवल धोखा देने के लिए करते हैं और इसकी आड़ में वे राष्ट्र को लूटने तथा मानवता को बरबाद करने में लगे हुए हैं।

दूसरी ओर, पुराने धार्मिक नैतिक मूल्य घिसे-पिटे और बेकार हो चुके हैं। अगर आप धार्मिक नैतिक मूल्यों का उपदेश देंगे तो कोई भी आपकी बात की ओर ध्यान नहीं देगा। लोग बल्कि आपको ही पागल समझेंगे। जो लोग पूजाओं का आयोजन करते हैं वे वास्तव में धर्म में विश्वास नहीं करते हैं। यह पागल दौड़ और शोर-शराबा केवल लोगों को तंग ही करता है। हर कोई समझता है कि इन सब पूजाओं का धार्मिक निष्ठा से कोई लेना-देना नहीं है बल्कि इसके पीछे दूसरे हेतु हैं, दूसरे कारण हैं। पूजाओं की संख्या बढ़ती जा रही है, लेकिन पुराने धार्मिक नैतिक मूल्य – समाज पर शायद ही कोई प्रभाव रखते हों। ग्रामीण जीवन में तो अभी भी इसके कुछ अवशेष खोजे जा सकते हैं लेकिन वहाँ भी बहुत ही ह्रासमान स्थिति में मिलेंगे। दूसरी ओर मध्यम वर्गीय शिक्षित लोगों में या शहरी तबके में धर्म के

(शेष पृष्ठ 7 पर)

धर्म, नीति-नैतिकता व धर्मनिरपेक्षता...

(पृष्ठ 6 का शेष)

नाम पर आनन्दोत्सव मनाने के लिए पागल दौड़ है और लोग आनन्दोत्सव की भावना से लगभग मतवाले हो जाते हैं। लेकिन धार्मिक नैतिक मूल्य शायद ही काम करते हैं। धार्मिक निष्ठा लेशमात्र भी नहीं बढ़ी है।

आज असलियत यह है कि या तो केवल साम्प्रदायिक दंगों के दौरान धर्म विश्वास जागता है या धर्म तब याद आता है जब अपनी बेटी की शादी करनी होती है। यह स्थिति पढ़े-लिखे लोगों में भी आम है। जनसभाओं में वे जनवाद पर लम्बे भाषण झाड़ते हैं और फिर घर आकर वे यह हिसाब-किताब करने पर उतर आते हैं कि चूँकि वे तो ऊँची-जाति के हैं इसलिए वे अपनी बेटियों को नीची जाति के दूल्हों के साथ शादी नहीं करने दे सकते। उनके लिए इसे सहन करना असम्भव है। ये वही लोग हैं जो नारी-मुक्ति, नीति-नैतिकता, नैतिक मूल्य और अन्य विषयों आदि पर लम्बे-लम्बे प्रवचन करते हैं, भाषण झाड़ते हैं। अगर जरूरत पड़े तो वे इधर-उधर से विचारों को संकलित करके, दूसरी-दूसरी किताबों में से सामग्री खोजकर या किसी दूसरी किताब से उसी विषयवस्तु को दोबारा लिखकर इन विषयों पर एक पूरा पौथा निकाल देंगे। इस प्रक्रिया में वे खूब पैसा कमा रहे हैं। नैतिक मूल्यों और नारी-मुक्ति पर काफी सूचनामूलक और विस्तृत चर्चाएं उनकी किताबों की शोभा बढ़ा सकती हैं लेकिन उनके खुद के परिवारों में उन्हीं मुद्दों से जब उनका पाला पड़ता है तो वे बिल्कुल दूसरे ही ढंग से पेश आते हैं। वे जनवाद के लिए या क्रान्ति के लिए संघर्ष को घर में नहीं ले गए हैं। उन्होंने अपने परिवारों में पूर्वाग्रहों से कठिन संघर्ष करके उन्हें दूर नहीं किया है। इसलिए मेरा सवाल है : अगर वे घर पर लड़ाई नहीं लड़ सकते और सामाजिक परिवेश में लड़ाई नहीं लड़ सकते तो वे किताबें लिखने और बेचने का कष्ट क्यों करते हैं? क्यों वे लोगों को मूर्ख बनाते हैं? किसलिए? क्या केवल मुनाफा कमाने के लिए? उन किताबों की बिक्री-राशि से प्राप्त रायल्टी उनको धन-वैभव प्रदान कर सकती है लेकिन यह असम्भव है कि वे इस तरह से जनवादी चेतना जगा सकते हैं या एक सामाजिक परिवर्तन ला सकते हैं। अगर वास्तव में वे यह करना चाहते हैं तो उन्हें संघर्ष शुरू करना ही होगा। पोथे लिखने की बजाय, अगर उन्होंने संघर्ष को समझा होता तो उनके द्वारा संघर्ष का बीड़ा उठाते ही दूसरे लोगों ने संघर्ष में उनके साथ मिल जाने के लिए प्रेरित हुआ महसूस किया होता। क्योंकि हम जानते है कि आम तौर पर लोग पढ़े-लिखे लोगों का उचित ढंग से और सचमुच आदर करते हैं।

इस तरह पुराने धार्मिक नैतिक मूल्य अब समाज में अपनी भूमिका जिस कदर नि:शेषित कर चुके हैं और मानवतावादी नैतिक मूल्य भी अपर्याप्त और गैरकारगर हो चुके हैं जबकि आज की सामाजिक प्रगति में सहायक व आज की जीवन पद्धति के परिपूरक कोई नई विचारधारा या मूल्यबोध नजर नहीं आते हैं। विचारधारा, नीति-नैतिकता और सिद्धान्तों के स्तर में एक बड़ी भारी शून्यता पैदा हो गई है। इस स्थिति में अवश्यम्भावी तौर पर हर कोई अपने व्यक्तिगत विवेक या अन्त:प्रेरणा या संकटकाल के अपने-अपने सोच-विचार से संचालित है। नौजवानों को अकेले दोष देने से फायदा क्या है? हर कोई जानता है कि जवानी का जोश एक तेज तूफान की तरह आता है। इसे सही रास्ते पर संचालित करने के लिए उन्नत सिद्धान्त की नींव पर नई नीति-नैतिकताओं को जन्म देने की जरूरत होती है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों को संगठित करके ही समाज में हम नए मूल्यबोधों और सिद्धान्तों का प्रभाव फैला सकते हैं। हर देश में, हर युग में यही प्रक्रिया रही है।

युवा शक्ति आज खुलकर आगे आ रही है और वैचारिक क्षेत्र में शून्यता होने के कारण हमारे पास इसका पथ-प्रदर्शन करने का कोई उपाय नहीं है। इन नौजवानों में उद्देश्यहीनता और निराशा छा रही जिसे देख कर हम कांप उठते हैं।

जबकि सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन से विचारधारा में व्याप्त इस शून्यता को भरने की अपेक्षा की जाती है। शिक्षण संस्थाएं इन आन्दोलनों को रूपाकर देने में एक प्रमुख और शक्तिशाली भूमिका अदा कर सकती हैं। लेकिन इस दृष्टिकोण से शिक्षा व्यवस्था और शिक्षण संस्थाओं को नए सिरे से ढालने की दिशा में कोई नहीं सोचता। इस काम को करने के लिए पढ़ाई के पाठ्यक्रमों और पढ़ाई के कोर्सों को धार्मिक प्रभाव से मुक्त करना ही काफी नहीं है। हमें साथ ही यह भी देखना होगा कि जो कोर्स पढ़ाए जाते हैं वे धार्मिक प्रभाव से मुक्त कर दिए जाने के बाद, केवल एक सूचनामूलक ज्ञान ही तो प्रदान नहीं करते हैं। हमें सुनिश्चित करना होगा कि पढ़ाई के उन पाठ्यक्रमों या कोर्सों में छात्रों में पनपाने के लिए कोई नैतिक मूल्य हैं या नहीं। अगर वे छात्रों में नैतिक मूल्य पनपाते हैं तो हमें इन आदर्शों और मूल्यबोधों के चरित्र की जांच-परख करनी होगी यह तय करने के लिए कि ये नैतिक मूल्य और आदर्श सामाजिक प्रगति के पूरक हैं या नहीं। यह करने के लिए हमें हमारे देश के सांस्कृतिक विकास के जटिल रास्ते का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करना होगा और उसके आधार पर हमारे से एकदम पूर्ववर्ती दौर का एक सही-सही और वैज्ञानिक मूल्यांकन करना होगा। हमारा यह प्रयास इसे स्पष्ट कर देगा कि मानवतावादी आन्दोलन जो कि धार्मिक सुधारों के द्वारा शुरू हुआ था, उसे धार्मिक प्रभाव से मुक्त करने की चेष्टा करने वाले पहले व्यक्ति विद्यासागर थे। परन्तु मानवतावादी आन्दोलन की इस ताकतवर आवाज को कुछ कदम आगे बढ़ने के बाद एक धक्का पहुँचा। बाद में जब आजादी की चाह और आजादी आन्दोलन उत्तरोत्तर एक शक्तिशाली लहर में परिणत हो गए तो तत्कालीन बंगाल के सामाजिक आकाश-पटल पर शरतचन्द्र और नजरूल, खास तौर पर, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के साथ उभरे थे।

फिर, चूँकि भारत में पूँजीवाद निर्मित करने की आकांक्षा से आजादी हासिल करने एवं स्वाधीन, सार्वभौम राष्ट्र कायम करने के लिए आन्दोलन एक ऐसे दौर में शुरू हुआ था जब विश्व पूँजीवादी क्रान्ति नि:शेष हो चुकी थी और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति समाजवादी और सर्वहारा क्रान्ति के स्तर में प्रवेश कर चुकी थी। अत: उन सब देशों की बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति जो राष्ट्रीय तौर पर अभी भी बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के स्तर पर थी, वे देश या समाज जो ऐतिहासिक विकास के इस स्तर को अभी पार नहीं कर पाए थे और वे देश जिनमें बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति घटित नहीं हुई थी, अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रान्ति के अभिन्न अंग बन चुके थे। दूसरी ओर, चूँकि राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति अनिवार्यत: बुर्जुआ क्रान्ति होती है, इसलिए अगर हर देश में मजदूर वर्ग इस आन्दोलन में नेतृत्व देने में असमर्थ रहे तो स्वाभाविक परिणाम के तौर पर इस युग में स्वाधीनता आन्दोलन व नवजागरण आन्दोलन ह्रासोन्मुख बुर्जुआ रुझान से और साथ ही बुर्जुआ क्रान्ति के पूर्ववर्ती दौर के विचारों व चिन्तन से भी प्रभावित होना लाजमी है। भारत में भी इसका अपवाद नहीं हुआ।

इसलिए, चूँकि मानवतावादी विचार और धारणाएं 19वीं शताब्दी के ह्रासोन्मुख व प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद के दौर में भारत में पहुँची जब मानवतावाद अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर ह्रासोन्मुख हो चुका था और चूँकि स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के हाथों में था जोकि समाज का धन्नासेठ तबका था। अत: अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग का, यूरोप के ह्रासोन्मुख मानवतावाद का अभिन्न अंग होने के नाते राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का उस समय मुख्य व प्रमुख रुझान धर्म के साथ समझौता करना और मानवतावादी मूल्यबोधों के साथ धार्मिक नैतिक मूल्यों को मिश्रित करना हो गया था। उसमें अतीत की विश्व पूँजीवादी क्रान्ति के युग के बुर्जुआ वर्ग के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का अभाव था। सामन्तवाद को पूर्णत: ढहा कर और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक समझौताहीन संघर्ष चलाकर समाज का एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की दिलेरी का उनमें सर्वथा अभाव था। क्योंकि उनके मन में मजदूर वर्ग की क्रान्ति का डर समाया हुआ था और इसके फलस्वरूप उनका वर्ग चरित्र अब क्रान्तिकारी नहीं रहा था। साम्राज्यवाद के विरुद्ध उनकी जो भी लड़ाई हो, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग का अभिन्न अंग होने से वे साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के साथ समझौतापरस्त हो गए थे। वे यहाँ पर विदेश की वित्तीय पूँजी और देश के सामन्तवाद के साथ समझौता करके पूँजीवाद निर्मित करना चाहते थे। संक्षेप में वे चरित्र में सुधारवादी किस्म के विरोधी हो गए थे।

पैटी-बुर्जुआ क्रान्तिकारिता

बहुत से लोग इस तथ्य को ध्यान में रखने में नाकाम रहे कि हमारे देश के बुर्जुआ वर्ग में क्रान्तिकारी चरित्र ही पैदा नहीं हुआ था। इस वजह से ह्रासोन्मुख विश्व पूँजीवादी व्यवस्था की बहुत सारी कमजोरियाँ और सनकें उनमें पाई जाती हैं। इस युग में बुर्जुआ वर्ग इन अवगुणों को हमारे देश सहित सभी देशों में लेकर चल रहा है। असल में इस युग में सभी देशों में राष्ट्रीय बुर्जुआ चरित्र के ये आम लक्षण बन गए हैं। परन्तु आपने देखा होगा कि इस मामले में हमारे देश में स्थिति दूसरे पूँजीवादी देशों के मुकाबले और भी खतरनाक है। हमारे देश के सामाजिक जीवन और राष्ट्रीय ताने-बाने में आजादी के बाद विभिन्न रुझानों की बहुत सारी अजीब मनोवृत्तियाँ देखी गई जो कि न तो यूरोप में थी और न ही अमेरिका में पैदा हुई थी, जो कि साम्राज्यवाद व प्रतिक्रिया के गढ़ हैं और आज दुनिया भर में आजादी आन्दोलनों के घोर शत्रु हैं। इसका कारण यह है कि अमेरिका और यूरोप के साम्राज्यवादी देशों में राष्ट्रीय चरित्र कभी एक क्रान्तिकारी परम्परा रखता था। इसलिए वहाँ राष्ट्रीय चरित्र में चाहे कितना भी पतन क्यों न हो गया हो और वहाँ का बुर्जुआ वर्ग चाहे कितना भी गिरा हुआ क्यों न हो, उनके राष्ट्रीय चरित्र में वह पुरानी क्रान्तिकारी परम्परा अभी भी जारी है। जबकि हमारे देश के बुर्जुआ के राष्ट्रीय चरित्र में वह क्रान्तिकारी परम्परा कभी पैदा ही नहीं हुई। शुरू से ही यहाँ बुर्जुआ वर्ग ने स्वाधीनता आन्दोलन या जनवादी आन्दोलन को और नारी-स्वतन्त्रता के आन्दोलन को साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, धर्म, अन्धविश्वासों और सामाजिक पूर्वाग्रहों के साथ समझौता करके चलाया। हालांकि समझौते के रास्ते उन्होंने सामन्तवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया। वर्ना, जो स्वाधीनता आन्दोलन या जनवादी आन्दोलन, स्वाधीन, सार्वभौम राष्ट्र कायम करने के लिए आन्दोलन यहाँ कुछ हद तक विकसित हुआ वह हो ही नहीं सकता था, भले ही उसमें कमजोरियाँ जो भी रही हों। परन्तु उसके समझौतापरस्त रुख के कारण सांस्कृतिक क्षेत्र में, विचारों में और राजनैतिक आन्दोलन में ह्रासोन्मुख मानवतावाद प्रतिफलित हुआ। यही वजह है कि मानवतावादी और जनवादी धारणाओं को केन्द्रित करके जो आन्दोलन विकसित हुआ था उसमें बिल्कुल शुरू से ही बहुत सारी कमजोरियाँ घर कर गई थी।

दूसरी ओर चूँकि यह स्वाधीनता आन्दोलन बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति था और चूँकि भारतीय नवजागरण, आधुनिक यूरोप के साथ नए सम्पर्क और नए सम्बन्धों के फलस्वरूप यूरोप के आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के प्रभाव से आया था, इसलिए नवजागरण का शुरूआती दौर का वह क्रान्तिकारी चरित्र जो धर्म और परम्परावाद के साथ पूर्णत: समझौताहीन था एवं जिसने पुरानी सामाजिक व्यवस्था और पुराने नैतिक मूल्यों, नीति-नैतिकताओं, सिद्धान्तों व कायदे-कानूनों की पुरानी मान्यताओं-धारणाओं को तोड़ा था और जिसने औद्योगिक क्रान्ति की हितसाधक व जीवन के जनवादी ढंग की परिपूरक, मानव का कल्याण करने वाली और समाज की नई-नई जरूरतों की पूर्ति करने वाली नीति-नैतिकताओं व नैतिक मूल्यों की एक नई धारणा साहस के साथ पैदा करनी चाही थी, अर्थात् मानवतावादी नीति-नैतिकताओं व नैतिक मूल्यों का क्रान्तिकारी पहलू, धर्म के विरुद्ध समझौताहीन रुख तथा धर्मनिरपेक्ष आदर्श व धारणाएं आदि सब कुछ साथ-साथ भारत में आया था। हालांकि मानवतावाद की यह क्रान्तिकारी धारा अब वहाँ भी कहीं नहीं रही थी। परन्तु भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन की जो भावना व्याप्त थी, उसके कारण इस धारा का यहाँ प्रतिफलन हुआ था। इसके अलावा ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध लड़ते हुए, आजादी आन्दोलन में चूँकि भारतीय पूँजीपति वर्ग नेतृत्व में था अर्थात् भारतीय पूँजीपति वर्ग राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष में रत था इस कारण भी यह धारा यहाँ प्रतिफलित हुई थी। लेकिन चूँकि यहाँ के पूँजीपति वर्ग ने उस समय स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व देते हुए बुर्जुआ मानवतावाद के इस समझौताहीन धारा से कन्नी काटनी चाही थी और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद जो कि पलायनवादी, ह्रासोन्मुख हो चुका था एवं मानवतावाद की समझौतापरस्त धारा को प्रश्रय दे रहा था, उसका अभिन्न अंग होने के कारण यहाँ का पूँजीपति वर्ग समझौतापरस्त धारा लेकर चला था, इसलिए मानवतावाद की यह क्रान्तिकारी धारा इस देश में पेटी-बुर्जुआ क्रान्तिकारिता के रूप में प्रतिफलित हुई थी। इस पेटी-बुर्जुआ क्रान्तिकारिता ने बुर्जुआ क्रान्ति के शुरूआती दौर के यौवन से भरपूर, क्रान्तिकारी, समझौताहीन और धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद को प्रतिफलित किया था जिसकी दिशा नारी-मुक्ति, व्यक्ति-स्वातंत्र्य, धर्म के प्रति समझौताहीन रुख, ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध लगातार समझौताहीन एवं क्रान्तिकारी विरोध का साहसी भाव रखने की ओर थी –लेकिन मजदूर वर्ग की क्रान्ति के अर्थ में नहीं बल्कि बुर्जुआ क्रान्ति के अर्थ में। अगर स्वाधीनता आन्दोलन के नेतृत्व में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग नहीं होता तो पेटी-बुर्जुआ क्रान्तिकारिता की सरगर्मी हमारे देश के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का एक प्रधान लक्षण होती। काश ऐसा हुआ होता, इसके अलावा इस युग के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रान्ति के अभिन्न अंग होने की वजह से, आगे चलकर इससे समाजवादी क्रान्ति की ओर प्रगति आसान हो गई होती। लेकिन हकीकत यह है कि बुर्जुआ मानवतावाद की यह क्रान्तिकारी धारा हमारे स्वाधीनता आन्दोलन की मुख्य धारा के तौर पर उभर कर नहीं आ सकी। ... ●●●

R.N.I. No.- 43022/85
P.R.No.-DL(C)-01/1123/2012-2014
Posting at IPMBC on 7–8 and 22–23 Fortnightly, Date of Printing :5 Dec, 2014

'महान नवम्बर क्रांति और उसकी प्रासंगिकता' विषय पर परिचर्चा

पटना (बिहार) : महान नवम्बर क्रांति दिवस के मौके पर आज एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) पटना जिला कमिटी के तत्वावधान में 'महान नवम्बर क्रांति और उसकी प्रासंगिकता' विषय पर यहां 13 नवम्बर को एक परिचर्चा आयोजित की गई। मुख्य वक्ता के तौर पर संबोधित करते हुए पार्टी के पोलित ब्यूरो सदस्य कॉ. रंजीत धर ने कहा कि विश्व सर्वहारा के महान नेता कॉमरेड लेनिन ने रूस की धरती पर मार्क्सवादी विज्ञान को ठोस रूप में प्रयोग करते हुए मजदूर वर्ग को शिक्षित और संगठित कर क्रांति को सफल बनाया। इस क्रांति के जरिये मानव सभ्यता के इतिहास में पहली बार हजारों सालों से समाज में जारी शोषण का खात्मा हुआ और शोषण-उत्पीड़न रहित समाज की स्थापना हुई। कॉमरेड धर ने कहा कि महान मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के नियमों की खोज की और बताया कि शोषण-दमन और गैर बराबरी पर आधारित मौजूदा समाज भी बदलेगा। लेनिन ने सोवियत रूस में क्रांति कर मार्क्स के विचार को प्रमाणित किया। उन्होंने कहा कि सोवियत संघ में कोई व्यक्ति बेरोजगार नहीं था, सबके लिए शिक्षा और इलाज की गारंटी थी। सिर्फ इतना ही नहीं, वेश्यावृत्ति और भिक्षावृत्ति का नामो-निशान मिट गया था। समाज के लोगों की तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य करता था। उन्होंने कहा कि पूंजीवाद में व्यक्तिगत मालिकाने के आधार पर उत्पादन होता है। यहां लोगों की जरूरत को नहीं, बल्कि सर्वोच्च मुनाफे को ध्यान में रखकर उत्पादन किया जाता है। जबकि समाजवाद में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, उनकी जरूरत को ध्यान में रखकर उत्पादन होता है। कॉमरेड धर ने कहा कि आज पूंजीवाद अपने ही नियम से घनघोर आर्थिक संकट में फंसा हुआ है। लोगों की खरीद क्षमता लगातार घटती जा रही है। कल-कारखाने बंद हो रहे हैं। सामाजिक विकास अवरूद्ध है। उन्होंने आगे कहा कि अमेरिकी साम्राज्यवाद और इसके सहयोगी एक के बाद एक देश पर हमले कर रहे हैं, लाखों लोगों की हत्या कर रहे हैं, उनकी स्वतंत्रता का हनन कर रहे हैं और अंतर्राष्ट्रीय कायदे-कानून की तनिक भी परवाह किये बगैर उन पर वर्चस्व कायम कर रहे हैं तथा उन्हें गुलाम बना रहे हैं। दूसरी तरफ,

परिचर्चा को संबोधित करते हुए कॉ. रंजीत धर (बीच में) उनके दाहिने ओर कॉ. शिवशंकर और बांई ओर कॉ. अरुणकुमार सिंह

प्रगतिशील, जनवादी और क्रांतिकारी आंदोलनों के विकास को रोकने के मकसद से जनता को अमानव बनाने के लिए साम्राज्यवादियों द्वारा प्रतिक्रियावादी विचारों और धार्मिक कट्टरपंथी सोच को बढ़ावा दिया जा रहा है। अपने देश में भी एकाधिकार पूंजीपतियों द्वारा अपने निर्मम शोषण को जारी रखने तथा उसे और तीव्र करने के इरादे से भाजपा जैसी बेहद प्रतिक्रियावादी-साम्प्रदायिक पार्टी को सरकार में बैठाया गया है, जिसने देश में फासीवाद के खतरे को बढ़ा दिया है। कॉमरेड धर ने कहा कि सिर्फ पिछड़े पूंजीवादी देशों में ही नहीं, बल्कि अमेरिका और पश्चिमी यूरोप जैसे विकसित साम्राज्यवादी देशों में भी लगातार और स्वत:स्फूर्त जन आंदोलन उठ खड़े हो रहे हैं। इन स्वत:स्फूर्त जन आंदोलनों को संगठित प्रतिरोधात्मक आंदोलन में तब्दील कर क्रांति के मुकाम तक पहुंचाने के लिए जरूरत है आवश्यक ताकत के साथ मजदूर वर्ग की सही क्रांतिकारी पार्टी और मौजूदा राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में क्रांति की सही लाइन।

परिचर्चा को एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) बिहार राज्य कमिटी के वरिष्ठ सदस्य कॉमरेड अरूण कुमार सिंह ने भी संबोधित किया। परिचर्चा की अध्यक्षता पार्टी के राज्य सचिव कॉमरेड शिव शंकर ने की। कार्यक्रम की शुरूआत सर्वहारा के महान नेता कॉमरेड शिवदास घोष पर रचित गीत से तथा समापन अंतर्राष्ट्रीय गीत से हुआ।

रेलवे स्टेशनों का निजीकरण करने के बीजेपी सरकार के अनर्थकारी कदम की तीव्र निंदा

एसयूसीआई(सी) के महासचिव कॉ. प्रभाष घोष ने 1 दिसम्बर को जारी बयान में कहा कि सत्ता में आते ही यात्री किराये व माल भाड़े में भारी वृद्धि व रेलवे आधुनिकीकरण के नाम पर 100 % सीधे विदेशी निवेश के ऐलान के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अब रेलवे स्टेशनों के निजीकरण व वहां विलासतापूर्ण होटल-रेस्तरां व अन्य सुविधाओं के लिए आह्वान किया है। दूसरे शब्दों में , उन्होंने अंततोगत्वा रेलवे परिचालन को निजी संचालकों के हाथों में सौंपने के सरकार के फैसले को उजागर कर दिया है जिसके चलते रेल यात्रा बहुत महंगी हो जाएगी, आम मुसाफिरों की पहुंच से भी बाहर हो जाएगी, यहां तक कि स्टेशन में प्रवेश की लागत भी भारी पड़ेगी। इस नितांत जनविरोधी कदम की हम घोर निन्दा करते हैं जो देशी-विदेशी एकाधिकारी पूँजीपतियों के स्वार्थ में भूमण्डलीकरण-निजीकरण-उदारीकरण के विनाशकारी नुस्खों को पूर्णत: लागू करने के बीजेपी सरकार के अनर्थकारी एजेण्डे के अनुरूप है। हम लोगों का आह्वान करते हैं कि वे ऐसे एक अनिष्टकारी कदम को रोकने के लिए प्रतिवाद में उठ खड़े हों और संगठित आन्दोलन तेज करें।

यूनिवर्सिटी छात्र संघ चुनाव में
एआईडीएसओ की ऐतिहासिक जीत

इलाहाबाद (उ.प्र.) : 21 नवम्बर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी छात्र संघ चुनाव में एक ऐतिहासिक दिन था। चुनाव में ऑल इण्डिया डीएसओ ने 2 सीट जीती। ऑल इण्डिया डीएसओ के यूनिवर्सिटी कमेटी अध्यक्ष कॉ. अंकुश दुबे अपने करीबी प्रतिद्वंद्वी एबीवीपी के प्रत्याशी को 647 मतो से हरा कर कल्चरल सक्रेटरी के पद पर जीते। अंकुश दुबे को 2179 वोट मिले। कला संकाय यूजी प्रतिनिधि पद पर ऑल इण्डिया डीएसओ की यूनिवर्सिटी कमेटी के उपाध्यक्ष कॉ. भीम सिंह चण्देल 85 मतों से जीते। ऑल इण्डिया डीएसओ के प्रत्यासियों की जीत एबीवीपी जैसी साम्प्रदायिक ताकतों या जात-पात की ओच्छी राजनीति करने वाली समाजवादी पार्टी और धन बल-बाहु बल-मीडिया बल इस्तेमाल करने वाली राजनीति की हार है। इस ऐतिहासिक जीत पर ऑल इण्डिया डीएसओ की उ.प्र. राज्य अध्यक्ष कॉ. झरना मालवीय ने कॉलेज के सभी छात्रों को उनके भारी समर्थन उत्साहपूर्ण तैयारी के लिए छात्रों को बधाई दी।

जौनपुर(उ.प्र.) : वी.बी.एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर से सम्बद्ध टी.डी. कॉलेज के छात्र संघ चुनाव में

कला संकाय प्रतिनिधि पद पर आनन्द उपाध्याय ने एबीवीपी प्रत्याशी को हरा कर जीत हासिल की और विधि संकाय प्रतिनिधि पद की प्रत्याशी अन्नू यादव निर्विरोध निर्वाचित हुई। संगठन के प्रदेश सचिव कॉ. हरी शंकर मौर्य ने छात्रों को बधाई दी।

जबलपुर (म.प्र.) : सुप्रीम कोर्ट के एक विशेष पैनल के जरिए वेश्यावृत्ति को कानूनी दर्जा देने के लिए देश भर में बहस कराने की खबर कुछ अखबारों में छपी है। इस पर ऑल इण्डिया महिला सांस्कृतिक संगठन(एआईएमएसएस) के नेतृत्व में अपना रोष जाहिर करती हुई महिलाएं

आईटीआई में सेमेस्टर प्रणाली लागू करने के खिलाफ
विधानसभा पर युवाओं का प्रदर्शन

लखनऊ (उ.प्र.) : 25 नवम्बर को उ.प्र. के विभिन्न जनपदों से एआईडीवाईओ के नेतृत्व में सैकड़ो छात्र-युवाओं ने मांग लिखी पट्टिकाएं लेकर चार बाग रेलवे स्टेशन से जुलूस निकाला। हुसैनगंज चौराहा होते हुए विधानसभा भवन के सामने पहुंचकर जुलूस सभा में तब्दील हो गया। मुख्यमन्त्री, प्रधानमन्त्री, डीजीआईटीआई एवं श्रम मन्त्रालय के नाम 10 सूत्री मांगों का ज्ञापन प्रशासनिक अधिकारी को सौंपा गया। सभा का संचालन प्रदेश कोषाध्यक्ष कॉ. प्रमोद कुमार शुक्ल ने किया।

एआईडीवाईओ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष कॉ दीपक कुमार ने कहा कि सेमेस्टर प्रणाली छात्र-विरोधी व शिक्षा-विरोधी नीति है जो घोर अनियमितताओं व अनिश्चितताओं से परिपूर्ण है। इससे छात्र साल भर एडमिशन, परीक्षा, रिजल्ट में ही उलझे रहते हैं। उन्हें प्रैक्टिकल का मौका ही नही मिलता। करोड़ों युवा हाथ में डिग्री लेकर दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। रोजगार के नाम पर बनने वाली प्रत्येक नीति युवाओं के लिए छलावा साबित हो रही है। पूँजीपतियों को करोड़ों रुपये के पैकेज दिये जा रहे हैं पर युवाओं को रोजगार देने की बात पर सरकार खजाना खाली होने का रोना रो रही है।

संगठन के प्रदेश सचिव कॉ रविशंकर ने कहा कि सेमेस्टर प्रणाली चिन्तन करने की प्रक्रिया पर बहुत बड़ा प्रहार है। इससे छात्रों में पढ़ो, लिखो और भूल जाओ की मानसिकता पनपेगी। उन्होंने आईटीआई के सभी प्रशिक्षुओं को 50 रु. की बजाय 1500 रु. मासिक भत्ता देने की मांग की और युवा-विरोधी नीतियों के खिलाफ नौजवानों से उन्नत नीति-नैतिकता के आधार पर आन्दोलन चलाने का आह्वान किया। प्रदेशाध्यक्ष कॉ. हरकिशोर सिंह और राज्य कमेटी सदस्य कॉ सुमनलता ने भी सभा को सम्बोधित किया।

छात्र-छात्राओं पर पुलिसिया बर्बर हमले का
एआईडीएसओ ने किया विरोध

फलोदी(राजस्थान) : एआईडीएसओ संयोजिका संगीता रावत ने 29 नवम्बर को जारी एक बयान में कहा कि राजस्थान यूनिवर्सिटी में छात्र संघ के चुनाव कराने की मांग को लेकर आंदोलनरत छात्र-छात्राओं पर पुलिस द्वारा किये गये बर्बर हमले का एआईडीएसओ पुरजोर विरोध करता है और पुलिस द्वारा लाठी चार्ज में घायल हुए छात्र-छात्राओं की न्यायोचित मांगों के लिए आंदोलन के साथ एकजुटता जाहिर करता है।

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) की ओर से कॉ. सत्यवान द्वारा 3ए/38, डब्ल्यू.ई.ए., करोल बाग, नई दिल्ली-5 से संपादित व प्रकाशित तथा परम्परा प्रिंटिंग प्रेस, बी-70/83, इण्डस्ट्रियल एरिया, लॉरेंस रोड, दिल्ली-35 से मुद्रित, दूरभाष:011-25726631, Email: sarvaharadrishtikon@gmail.com; sarvaharadrishtikon@yahoo.com